कल्याण
वर्ष ३१]
* * *
[अङ्क ७

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,४५,०००

कल्याण, सौर श्रावण २०२२, जुलाई १९६५

विषय-सूची

चित्र-सूची

वार्षिक मूल्य भारतमें रु० ७.५० विदेशमें रु० १०.०० (१५ शिलिङ्ग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत चित आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति भारतमें ४५ पै० विदेशमें ५६ पै० (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

प्रेमकी लूट

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

सदा सर्वत्रास्ते ननु विमलमाद्यं तव पदं तथाप्येकं स्तोकं नहि भवतरोः पत्रमभिनत् ।
क्षणं जिह्वाग्रस्तं तव तु भगवन्नाम निखिलं समूलं संसारं कषति कतरत् सेव्यमनयोः ॥

वर्ष ३९ } गोरखपुर, सौर श्रावण २०२२, जुलाई १९६५ { संख्या ७ पूर्ण संख्या ४६४

प्रेमकी लूट

चली स्याम-गत-चित्ता ग्वालिनि धर सिर दधि-पूरन मटकी ।
चिंतत स्याम, पुकारत स्यामहि, पहुँची बन इकंत भटकी ॥
मधुर विकलता गोपी-मनकी, स्याम-चित्तमें जा खटकी ।
प्रगटे तुरत, मधुर गोपी-मुखपद्म दृष्टि-भ्रमरी अटकी ॥
निरखि स्याम सन्मुख सहसा मन छयौ अमित अचरज आनंद ।
देखि रही अपलक अचरज, अंगुरि धरि चिबुक, वदन सुखकंद ॥
रसमय स्याम लैन हिय-रस-दधि भरयो लगे लूटन स्वच्छंद ।
छलक्यो दधि उत, इत मन-रस-निधि छलक्यो, बढ़्यो तोरि सब बंध ॥

याद रक्खो—भगवान् चिदानन्दस्वरूप हैं, परमानन्दमय हैं और वे दिन-रात आठों पहर तुम्हारे साथ रहते हैं—सोते-जागते, खाते-पीते, चलते-बैठते—सभी समय सभी अवस्थाओंमें। तुम उनको भूले हुए हो, इसीसे दुखी होते हो। उनका अनुभव नहीं करते, इसीसे भय-विषादसे भरे रहते हो। अनुभव करो—तुम्हारे जीवनके प्रत्येक क्षणमें भगवान् तुम्हारे साथ हैं, तुम्हारे जीवनकी प्रत्येक क्रियामें भगवान् तुम्हारे साथ हैं।

याद रक्खो—वास्तवमें समस्त जगत्के रूपमें एकमात्र भगवान् ही अभिव्यक्त हो रहे हैं। भगवान् ही एकमात्र सत्य हैं। वे आनन्दस्वरूप हैं। जगत्में जो कुछ सुन्दर-भयानक हो रहा है, सब उन्हीं आनन्दस्वरूपकी आनन्दमयी लीला है; इसे अनुभव करो और नित्य सुखी हो जाओ।

याद रक्खो—भगवान्से रहित जिस जगत्की कल्पना है, वह सर्वथा असत् है और जहाँ उसकी कल्पित सत्ता है, वहाँ वह अनित्य, अपूर्ण तथा नित्य अत्यन्त दुःखमय है। उसमें सदा सर्वत्र दुःखकी ही नयी-नयी ज्वालाएँ प्रकट होती और भड़कती रहती हैं; उससे त्राण पाना हो तो वह जिन आनन्दमय भगवान्में कल्पित है, सदा सर्वत्र उन आनन्दमय लीलामय भगवान्को और उनकी आनन्दमयी लीलाको ही देखो।

याद रक्खो—तुम भी आनन्दमयकी आनन्दमयी लीला-सुधाधाराके प्रवाहमें ही उन्हीं लीलासमुद्रकी एक तरङ्ग बने बह रहे हो, जब तुम उस आनन्दसमुद्रकी तरङ्ग हो तब स्वयं आनन्दसमुद्रके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो।

याद रक्खो—जगत्में जो कुछ भी व्यवहार हो रहा है—सब उनकी आनन्दमयी लीला है, और जो कुछ भी है, सब वे स्वयं आनन्दमय भगवान् ही हैं। अतः प्रत्येक व्यवहारमें उनकी लीलाके दर्शन करो और प्रत्येक पदार्थमें स्वयं लीलामयके। प्रत्येक फलके स्वरूपमें भी लीलामय भगवान् ही आते हैं,—कभी रोग बनकर—कभी नीरोगता बनकर; कभी सृजन बनकर—कभी संहार बनकर; कभी मान बनकर—कभी अपमान बनकर; कभी सुख बनकर—कभी दुःख बनकर; और कभी लाभ बनकर—कभी हानि बनकर। तुम सबमें सदा उन्हींको देखो।

याद रक्खो—वे भगवान् ही सब कुछ हैं। माता, पिता, गुरु, पति, भाई, मित्र, जिस किसी भी रूपमें—जैसा जो कुछ भी सम्बन्ध मानकर उनको अपना बना लो। वे उसी रूपमें तुम्हारे बनने और तुमको अपना बनानेके लिये तैयार हैं।

याद रक्खो—विश्वासके योग्य वही होता है जो सत्य है, नित्य है; असत्य और अनित्यपर विश्वास करनेवाला तो निराश ही होता है, धोखा ही खाता है। सत्य और नित्य एक भगवान् ही हैं। भगवान्के सिवा और जो कुछ भी है, सब असत्य है, कल्पित है और देखनेमें भी अनित्य प्रत्यक्ष है। अतएव भगवान्के अतिरिक्त अन्य किसीपर विश्वास तथा भरोसा करोगे तो वह तुम्हारी मूर्खता होगी; क्योंकि तुम उससे धोखा ही खाओगे।

याद रक्खो—तुम भगवान्पर विश्वास करके उन्हींको एकमात्र अपना मानकर उनकी ओर बढ़ना चाहोगे तो वे सहज अहैतुक सुहृद् तुम्हें सुखपूर्वक अपनी ओर खींच लेंगे। तुम्हारे सारे बाधा-विघ्नोंका सहज ही नाश हो जायगा। तुम्हारा पथ सुगम, सुखमय और प्रशस्त हो जायगा। इतना ही नहीं—जब तुम उनकी ओर चलना शुरू कर दोगे तब वे अपने प्रणके अनुसार तुम्हारी ओर चलना आरम्भ कर देंगे। वे चलेंगे अपनी चालसे और उनकी चाल है चलनेका संकल्प करते ही वहाँ पहुँच जाना। अतएव वे भगवान् तुम्हारे पास तुरंत आ पहुँचेंगे और उनका मङ्गलमय पावन सुदुर्लभ दर्शन-स्पर्श प्राप्तकर तुम कृतार्थ हो जाओगे। फिर कण-कणमें प्रतिक्षण अनवरत-रूपसे तुम उनके दर्शन करते रहोगे, तुम्हारा जीवन धन्य हो जायगा।

'शिव'

परमात्माकी प्राप्तिके लिये सार-सार बातें

(लेखक—ब्र० श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मनुष्यजन्म पाकर यदि परमात्माको प्राप्त कर लिया तो बहुत ही ठीक है, नहीं तो बड़ी भारी हानि है। श्रुति कहती है—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति
न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥
(केन० २।५)

'यदि इस मनुष्य-शरीरमें ही परब्रह्म परमात्माको जान लिया तब तो बहुत कुशल है और यदि इस शरीरके रहते-रहते उसे नहीं जान पाया तो महान् विनाश है—यही सोचकर बुद्धिमान् पुरुष प्राणीमात्रमें परब्रह्म परमात्माको समझकर इस लोकसे प्रयाण करके अमर हो जाते हैं।'

मनुष्यजन्मकी उन्नति और सफलताके लिये यहाँ कुछ साधनोपयोगी बातें बतायी जाती हैं। इनको पालन करनेके लिये तत्परतासे चेष्टा करनी चाहिये।

मनुष्यके जीवनमें तीन काल हैं—साधनकाल, व्यवहारकाल और शयनकाल—इन तीनों कालोंको ही उच्च-से-उच्च साधनकाल बना लेना चाहिये।

सोनेके समय भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रभाव और लीलाका श्रद्धा और प्रेमपूर्वक निष्कामभावसे चिन्तन करते हुए ही शयन करना चाहिये। उससे स्वप्न भी अच्छा आता है और वह शयनकाल भी साधनके रूपमें परिणत हो जाता है।

व्यवहारकालमें जो कुछ भी किया जाय, उसे साधनका रूप देना चाहिये। शास्त्रके विरुद्ध तथा प्रमाद, आलस्य और व्यसनमें एक क्षण भी नहीं बिताना चाहिये। सारे प्राणियोंको भगवान्‌का स्वरूप या उनमें भगवान्‌को व्यापक समझकर या वे सब भगवान्‌के ही हैं—ऐसे भगवद्भावसे उनकी निष्कामभाव-पूर्वक तत्परतासे सेवा करनी चाहिये।

इस प्रकारके भावसे की हुई सबकी सेवा भगवान्‌की ही सेवा है। भगवान्‌ने गीतामें बतलाया है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥
(१८।४६)

'जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धि-को प्राप्त हो जाता है।'

अतएव सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंके सहित यह समस्त संसार भगवान्‌से ही उत्पन्न हुआ है और भगवान्‌से ही व्याप्त है, भगवान् ही अपनी योगमायासे संसारके रूपमें प्रकट हैं। अतः यह संसार उनका ही स्वरूप है और इसमें जो कुछ हो रहा है, वह उनकी ही लीला है। इसलिये सबकी सेवा ही भगवान्‌की सेवा है—ऐसा समझकर अपने शास्त्रविहित कर्तव्य-कर्मोंका सबके हितके उद्देश्यसे निष्कामभावपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये। एवं संसारमें जो भी कुछ हो रहा है, उसको भगवान्‌की लीला समझकर भगवान्‌के प्रेममें मस्त रहना चाहिये। इस संसाररूप नाट्यशालामें भगवान् हमलोगों-को अपनी लीलाके रूपमें नाटक दिखा रहे हैं। भगवान्‌के इस अभिनयमें सम्मिलित होकर हमें इस नाट्यशालाके स्वामीकी रुखके अनुसार अभिनय करना चाहिये। नाटक करनेवालोंमें दो भाव रहते हैं। एक तो स्वाँगका भाव और दूसरा वास्तविक भाव—जैसे किसी मनुष्यको नाटकमें एक राजाका स्वाँग मिला और उसी मनुष्यके पिताको सिपाहीका स्वाँग मिला। एक तीसरे व्यक्तिने उस राजासे शिकायत की कि इस सिपाहीने चोरोंको छोड़ दिया है, तब राजा सिपाहीको बुलाकर

धमकाता है, इसपर सिपाही कहता है—'हुजूर ! यह मेरी भूल हो गयी, आगे भविष्यमें ऐसी भूल नहीं होगी।' इसपर राजाने उसको क्षमा कर दिया। विचार करना चाहिये। ऊपरसे तो उस राजा बने हुए मनुष्यका यह भाव है कि मैं राजा हूँ और यह सिपाही है तथा उस अभिनयमें उसे जैसा व्यवहार उसके साथ करना चाहिये, वैसा ही बर्ताव करता है और उसमें कमी नहीं आने देता; पर भीतरमें यह समझता है कि ये मेरे पूजनीय पिता हैं और मैं इनका पुत्र हूँ। इसी प्रकार हमें व्यावहारिक दृष्टिसे तो हम जिस वर्ण, आश्रम, परिस्थिति-में हैं, उसीके अनुसार उत्साह, सावधानी और प्रसन्नता-से सबके साथ विनयपूर्वक यथायोग्य न्याययुक्त व्यवहार करना चाहिये। और वास्तवमें अपने अन्तःकरणमें सदा यह भाव रहना चाहिये कि सब भगवान्के स्वरूप हैं तथा सबमें भगवान् हैं—ऐसा अनुभव करके भगवान्के प्रेममें मग्न रहना चाहिये। जैसे नाटकका अभिनेता यह समझता है कि नाटकमें स्वाँग करनेवाले व्यक्तियोंसे मेरा यह सम्बन्ध नाट्यभरके लिये है, वास्तविक नहीं है। अतः वह किसीसे भी अपना वास्तविक सम्बन्ध स्थापित नहीं करता। इसी प्रकार इस संसारके सभी सम्बन्ध माने हुए हैं, वास्तविक नहीं हैं—ऐसा समझ-कर हमें इनसे वास्तविक सम्बन्ध स्थापित नहीं करना चाहिये; क्योंकि वास्तवमें तो हमलोगोंका नित्य सम्बन्ध एक भगवान्से है एवं जैसे नाटकका वह राजा यह समझकर 'कि मेरे साथ इस सिपाहीका सम्बन्ध तो नाट्यके लिये है,' वह नाटकके नियमानुसार सिपाहीके साथ सब यथायोग्य व्यवहार करता हुआ भी अपने पिताके असली सम्बन्धको नहीं भूलता, इसी प्रकार हमलोगों-को इस संसारमें सबके साथ शास्त्रकी मर्यादाके अनुसार निःस्वार्थभावसे यथायोग्य बर्ताव करते हुए वास्तवमें हमारा जो भगवान्के साथ नित्य असली सम्बन्ध है, उसको कभी नहीं भूलना चाहिये। किंतु सबके साथ निष्कपट-भावसे सत्य व्यवहार करना चाहिये तथा सत्य, प्रिय, हितकर, विनययुक्त वचन बोलने चाहिये। अपनेमें अच्छेपनका अभिमान और स्वार्थका भाव कभी नहीं आने देना चाहिये। मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा और आराम-को कहीं भी स्थान नहीं देना चाहिये। जो कुछ करने-योग्य कार्य हो, उसे भगवान्की आज्ञाके अनुसार भगवान्-के लिये ही भगवान्को याद रखते हुए निष्कामभावसे करना चाहिये। ऐसा करनेसे अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। फिर उसमें दुर्गुण, दुर्भाव, बुरे और व्यर्थ संकल्प कभी नहीं रह सकते। फिर हमारा जीवन बदल जाता है। दिन-पर-दिन हमारी उन्नति विशेषरूपसे होने लगती है। फिर हमारा यह व्यवहार-काल भी साधनके रूपमें परिणत हो जाता है।

एकान्तके समय संध्या-गायत्री, जप-ध्यान, पूजा-पाठ, स्तुति-प्रार्थना आदि जो भी कुछ साधन करें, उन सबको श्रद्धा और प्रेमपूर्वक अर्थ और भावको समझकर निष्कामभावसे निरन्तर तत्परताके साथ करते रहना चाहिये एवं उस साधनको गुप्त रखना चाहिये। प्रकट करनेसे साधन सुरक्षित नहीं रहता, वह दम्भके रूपमें बदल जाता है। श्रद्धापूर्वक किये हुए साधनमें उत्साह रहता है, प्रेमसे किये हुए साधनमें प्रसन्नता रहती है। निष्काम भावपूर्वक किये हुए साधनसे शान्ति मिलती है, अर्थ और भावको समझकर निरन्तर किया हुआ साधन कीमती (मूल्यवान्)होता है। अतः शयनकाल, व्यवहारकाल और साधनकाल सबको परम साधनका रूप देकर उच्च-से-उच्च भावपूर्वक साधन करना चाहिये।

किंतु अपने साधनमें सफलता या उन्नति देखकर साधकको उसमें सुखका अनुभव करके उस सात्त्विक सुखमें भी रस नहीं लेना चाहिये। रस लेनेसे मनुष्य सुखके लोभमें आकर उसमें फँस जाता है, जिससे वह ऊपर नहीं उठ सकता; क्योंकि सात्त्विक सुख और सात्त्विक ज्ञान भी आसक्तिके कारण बाँधनेवाले हो जाते हैं। गीतामें भगवान्ने कहा है—

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥
(१४ । ६)

'हे निष्पाप ! उन तीनों गुणोंमें सत्त्वगुण निर्मल होनेके कारण प्रकाश करनेवाला और विकाररहित है, वह सुखके सम्बन्धसे और ज्ञानके सम्बन्धसे अर्थात् उसके अभिमानसे बाँधता है ।'

अभिमानसे मनुष्यकी उन्नति रुक जाती है और पतन हो जाता है । कोई मनुष्य भूलसे ऐसा मान ले कि 'मैं मुक्त हो गया, अब मुझे कुछ भी नहीं करना है' तो इस मान्यताके कारण वह साधनमें आगे नहीं बढ़ सकता बल्कि पतनकी ओर जाने लगता है । इसलिये अपनेमें गुणोंको लेकर अच्छेपनका अभिमान कभी किञ्चिन्मात्र भी भूलकर भी नहीं करना चाहिये । संसार और शरीरमें जो अभिमान, ममता, आसक्ति और कामना है, यह भी साधनमें बड़ा भारी विघ्न है । इसलिये इन सबका सर्वथा त्याग करके, जिससे समस्त प्राणियोंका परम हित हो उसीके लिये निष्कामभावसे तत्परताके साथ प्रयत्न करना चाहिये । इस प्रकार करनेसे मनुष्यको परम शान्ति शीघ्र ही मिल सकती है। भगवान् गीतामें कहते हैं—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥
(२ । ७१)

'जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है ।'

इसलिये यज्ञ, दान, तप, सेवा, तीर्थ, व्रत, जप, ध्यान, पूजा, पाठ, स्तुति, प्रार्थना आदि जो भी शुभ कर्म करें, उन सबको भगवान्की प्रेरणा और आज्ञाके अनुसार निष्कामभावसे करना चाहिये । मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा, स्वार्थ और आरामके लोभसे नहीं करना चाहिये । स्मरण रखना चाहिये कि भगवान्की प्रेरणा तो शास्त्रविरुद्ध क्रियाके लिये कभी नहीं होती । जो शास्त्रविरुद्ध क्रिया बनती है, उसमें अपने स्वभावका दोष हेतु है, जिसमें काम प्रधान है । जब अर्जुनने यह पूछा कि—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥
(गीता ३ । ३६)

'हे कृष्ण ! फिर यह मनुष्य स्वयं न चाहता हुआ भी बलात्कारसे लगाये हुएकी भाँति किससे प्रेरित होकर पापका आचरण करता है ।'

तब इसके उत्तरमें भगवान्ने यही कहा—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥
(गीता ३ । ३७)

'रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह बहुत खानेवाला अर्थात् भोगोंसे कभी तृप्त न होनेवाला और बड़ा पापी है । इसको ही तुम इस विषयमें वैरी जानो ।'

अतएव अपनेमें किसी भी प्रकारका शास्त्रविपरीत आचरण हो तो उसका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये । सब दोषोंके मूल कारण काम, क्रोध, लोभ आदि दुर्गुण ही हैं । क्रोध अपने दोषोंपर करना चाहिये और उन दोषोंका सर्वथा समूल विनाश कर डालना चाहिये तथा कामनाका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये । कामना करनी ही हो तो भगवान्का भजन-ध्यान निरन्तर होनेके लिये और भगवान्में परम श्रद्धा और परम प्रेम होनेके लिये करनी चाहिये । धन, सम्पत्ति और सांसारिक पदार्थोंका लोभ कभी नहीं करना चाहिये । लोभ करना ही हो तो भजन-ध्यानका साधन उत्तरोत्तर बढ़े, इसका लोभ करना चाहिये । उसमें कभी संतोष नहीं करना चाहिये ।

साधकको दूसरोंके दुर्गुणों तथा दुराचारोंको न कभी देखना, न चर्चा करना, न श्रवण करना और न

किसीमें दुर्भाव करना चाहिये । दूसरोंके दोषोंकी चर्चा करनेसे उसकी आत्माको दुःख होता है और दूसरोंमें दुर्गुण-दुराचार देखनेसे उनके संस्कार अपने हृदयमें जमते हैं तथा अपनेमें अभिमान और दूसरेमें घृणाबुद्धि होती है । इसलिये इसमें सब प्रकारसे पतन ही पतन है । ऐसा समझकर भूलकर भी कभी दूसरेके दोषोंकी ओर दृष्टि नहीं डालनी चाहिये ।

इसी प्रकार अपनेमें सद्गुण-सदाचारका आरोप करके अभिमान नहीं करना चाहिये; क्योंकि उससे मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाकी इच्छा जाग्रत् होती है एवं घोर पतन हो जाता है ।

कोई अपने मनके विपरीत भी आचरण करे तो उसपर न दुःख करना चाहिये और न क्रोध करना चाहिये; किंतु यदि स्वभावके दोषसे उसपर क्रोध आ जाय तो उससे क्षमाके लिये प्रार्थना करनी चाहिये । यदि हमपर कोई क्रोध करे तो हमें अपनी भूलकी खोज करनी चाहिये और उससे विनयपूर्वक पूछना चाहिये—'मेरा कोई दोष हुआ होगा, तभी तो आपको उत्तेजना हुई है । मेरी जो भी भूल हो गयी, उसको क्षमा करनेके लिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ । मुझे मेरी भूल बतावें, जिससे मैं भविष्यमें सावधान हो जाऊँ ।' दूसरा हमपर क्रोध करे, उस समय अपने मनमें यह भाव भी नहीं रहने देना चाहिये कि इसने मेरा कोई अपराध किया है, इससे बदला लेनेकी भावना कभी नहीं हो सकती ।

इस प्रकार किसी भी कारणसे अपनेको दूसरेपर क्रोध आ जाय, तब अपना ही अपराध मानकर उससे क्षमाके लिये प्रार्थना करे और दूसरेको हमपर क्रोध आ जाय तब भी अपना ही अपराध मानकर उससे क्षमाके लिये प्रार्थना करे तथा पुनः वैसी भूल न करनेका दृढ़ निश्चय करे, यह कल्याणका मार्ग है ।

इसके विपरीत, हमको किसीपर क्रोध आ जाय तब उसीपर दोष डालना कि तुम हमारे क्रोधके कारण बने और उसको हमपर क्रोध आ जाय तब भी उसीपर दोष लगाना—यह पतनका मार्ग है ।

किसी भी प्राणीको किसी भी निमित्तसे किञ्चिन्मात्र कभी दुःख नहीं पहुँचाना चाहिये; क्योंकि दूसरेकी हिंसा करके, उसको दुःख पहुँचाकर जो कुछ सुख प्राप्त किया जाता है, उससे बहुतगुणा अधिक दुःख दूसरेका अहित करनेके फलस्वरूप भोगना पड़ता है । अतः किसीका भी अहित करना अपना ही अहित करना है । ऐसा समझकर दूसरेका अहित किञ्चिन्मात्र भी भूलकर भी नहीं करना चाहिये । बल्कि सब प्रकारसे मन, वाणी, शरीर आदिके द्वारा अभिमान और स्वार्थसे रहित होकर सबके साथ विनययुक्त और सरल व्यवहार करते हुए सबका हित ही करना चाहिये । यह धर्मका सार है । श्रीरामचरितमानसमें बताया गया है—

परहित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥
(रा० च० मा०उत्तर० ४० । १)

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥
(रा० च० मा० अरण्य० ३० । ५)

भगवान् गीतामें कहते हैं—

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ।
(गीता १२ । ४ का उत्तरार्ध)

वे सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं । अतः अपनी सारी चेष्टा शास्त्रके अनुकूल और भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये अभिमान और स्वार्थसे रहित होकर सबमें भगवद्भाव रखते हुए केवल सबके हितके उद्देश्यसे ही धैर्य और उत्साहपूर्वक करनी चाहिये । इसके विपरीत कभी कोई दूसरी चेष्टा होनी ही नहीं चाहिये । चाहे कोई अपने अनुकूल करे या प्रतिकूल, अपनेको सबमें सदा समभाव रखना चाहिये तथा निःस्वार्थभावसे सबके साथ समानभावसे प्रेम ही

करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे ही मनुष्यजन्मकी सफलता है, नहीं तो मनुष्यजन्म व्यर्थ है।

इसलिये ऊपर बताये हुए सभी साधनोंको हर समय भगवान्‌के गुण-प्रभावयुक्त परम दयामय स्वभावका पद-पदपर दर्शन करते हुए तथा श्रद्धा और प्रेमपूर्वक निष्कामभावसे निरन्तर भगवान्‌के नामका जप और उनके स्वरूपका चिन्तन करते हुए ही करना चाहिये। इससे बहुत ही शीघ्र सफलता मिल सकती है।

भगवान्‌के समान हेतुरहित दया, प्रेम और हित करनेवाला संसारमें कोई नहीं है। ऐसा समझकर अपने अतिशय प्रेमास्पद भगवान्‌में अनन्य और विशुद्ध प्रेम बढ़ानेके लिये उनमें परम श्रद्धा करनी चाहिये। भगवान्‌के गुण और प्रभावका तत्त्व—रहस्य समझनेपर उनमें परम श्रद्धा अनायास ही होती है और भगवान्‌के अनन्य शरण होकर करुणाभावपूर्वक हृदयसे स्तुति-प्रार्थना करनेपर भी उनकी दयासे परम श्रद्धा होकर भगवान्‌में अनन्य विशुद्ध प्रेम हो सकता है।

भगवान्‌में क्षमा, दया, शान्ति, समता, प्रेम, संतोष, सरलता, सुहृदयता, ज्ञान आदि असंख्य गुण भरे हुए हैं। भगवान् गुणोंके सागर हैं, सारे संसारके गुणोंको एकत्र किया जाय तो वे उन गुणसागर भगवान्‌के गुणोंकी एक बूँदके समान भी शायद ही हों, भगवान्‌के गुण दिव्य, नित्य और चिन्मय हैं तथा संसारमें जो गुण प्रतीत होते हैं, वे सब जड और क्षणिक हैं एवं उन गुणसागर भगवान्‌के एक अंशके प्रतिबिम्बमात्र हैं। इसी प्रकार भगवान्‌का प्रभाव और उनकी महिमा भी अतिशय अपरिमित हैं। संसारमें जो भी कुछ गुण, प्रभाव, महिमा, ऐश्वर्य, विभूति, सामर्थ्य आदि दृष्टिगोचर होते हैं, वह सब मिलकर भगवान्‌के प्रभावका एक अंशमात्र है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको भगवान्‌ने अपने किसी एक अंशमें धारण कर रक्खा है। भगवान् गीतामें कहते हैं—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥
अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥
(१०। ४१-४२)

'जो-जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है उस-उसको तू मेरे तेजके अंशका ही प्राकट्य जान। अथवा हे अर्जुन! इस बहुत जाननेसे तेरा क्या प्रयोजन है। मैं इस सम्पूर्ण जगत्‌को अपनी योगशक्तिके एक अंशमात्रसे धारण करके स्थित हूँ।'

भगवान्‌के उपर्युक्त प्रभावको हरेक परिस्थितियोंमें पद-पदपर हर समय अनुभव करते रहनेसे मनुष्यकी बहुत शीघ्र उन्नति हो सकती है।

भगवान्‌का स्वभाव बड़ा ही कोमल और मधुर है। उनके समान स्वभाव तो किसीका है ही नहीं। वे अपने दासोंके दोषोंकी ओर कभी देखते ही नहीं। श्रीभरतजीने कहा है—

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ॥
(रा० च० मा० उत्तर० प्रारम्भकी चौ० ३)

अपने भक्तके प्रति भगवान्‌का इतना वात्सल्यभाव रहता है कि कैसा भी कोई पापी क्यों न हो, शरण आनेपर उसका वे कभी त्याग करते ही नहीं। जब रावणसे अपमानित होकर भक्त विभीषण भगवान्‌की शरणमें आये उस समय भगवान् सुग्रीव आदि अपने प्रियजनोंसे परामर्श करते हैं और उनके दिये हुए परामर्शका आदर करते हुए भी अपने स्वभावके विरुद्ध होनेसे उनकी बातको काममें नहीं लाते और कहते हैं—

सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी।
मम पन सरनागत भयहारी॥
कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू।
आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥

सनमुख होइ जीव मोहिं जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥
पापवंत कर सहज सुभाऊ।
भजनु मोर तेहि भाव न काऊ॥
जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई।
मोरें सनमुख आव कि सोई॥
निर्मल मन जन सो मोहिं पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥
भेद लेन पठवा दससीसा।
तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा॥
जग महुँ सखा निसाचर जेते।
लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते॥
जौं सभीत आवा सरनाई।
रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥
(रा० च० मा० सुन्दर० ४३।४, ४४।१ से ४)

भगवान्‌का शरणागत भक्तके साथ कैसा उच्चकोटिका व्यवहार है। उनका यह बहुत ही कृपापूर्ण भक्त-वत्सलताका स्वभाव है। अतः हमलोगोंको हरेक परिस्थितिमें भगवान्‌के गुण-प्रभावको तथा उनकी अहैतुकी दया और प्रेमपूर्ण स्वभावको देख-देखकर हर समय प्रेममें मग्न होकर विभोर रहना चाहिये। इस प्रकार श्रद्धा-विश्वासपूर्वक प्रेममें ही नित्य-निरन्तर मग्न रहनेपर भगवत्कृपासे बहुत ही शीघ्र भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है।

प्रार्थनाका प्रभाव

(लेखक—पं० श्रीदेवदत्तजी मिश्र, का० व्या० सां० स्मृतितीर्थ)

इस दुःखालय संसारमें पतित त्रिविध तापसे संतप्त प्राणीको जब बाह्य साधनोंसे दुःखकी निवृत्ति होती हुई नहीं दिखायी पड़ती, तब वह ईश्वरकी प्रार्थना करता है। प्रार्थनामें जब अनन्यता आती है, तब उसकी पूर्ति करनेमें भगवान् देर भी नहीं करते।

पृथ्वीपर जब पापकी वृद्धि और धर्मका ह्रास होता है, तब पृथ्वी अपने सृष्टिकर्ता ब्रह्मासे अपना दुःख कहती है और ब्रह्माजी स्वयं और देवताओंको भी अपने साथ लेकर भगवान् विष्णुकी शरणमें जाते हैं और उनकी स्तुति करते हैं। स्तुतिसे संतुष्ट होकर आकाशवाणीद्वारा वे ब्रह्माको सान्त्वना देते हैं। और ब्रह्माजी देवताओंसे कहते हैं—

पुरैव पुंसावधृतो धराज्वरो
भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम्।
स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः
स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद् भुवि॥
(श्रीमद्भा० १०।१।२२)

अर्थात् पुराणपुरुषोत्तम भगवान् स्वयं इस भूदेवीके दुःखको दूर करेंगे। आपलोग उनकी सेवाके लिये यदुवंशमें जाकर मनुष्यका शरीर धारण करें और तबतक आपलोग पृथ्वीतलपर रहें, जबतक भगवान् अपनी कालशक्तिसे पृथ्वीका दुःख दूर करनेके लिये पृथ्वीपर रहेंगे। आकाशवाणीसे भगवान्‌ने कहा है कि मैं वसुदेव राजाके घर अवतार ग्रहण करूँगा।

अतः मैं आपलोगोंको यही उचित सलाह देता हूँ कि उस वसुदेवके घर नररूप धारण करनेपर उनको आनन्दित करनेके लिये देवियाँ गोपकन्याओंके रूपमें प्रकट हों। यथा—

वसुदेवगृहे साक्षाद् भगवान् पुरुषः परः।
जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः॥
वासुदेवकलानन्तः सहस्रवदनः स्वराट्।
अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया॥
विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितं जगत्।
आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे सम्भविष्यति॥
(श्रीमद्भा० १० । १ । २३—२५)

तात्पर्य यह है कि प्रार्थनाके प्रभावसे बड़ी-से-बड़ी आपत्तियाँ तत्क्षण दूर हो जाती हैं। महाभारतमें द्रौपदी-की प्रार्थनासे भगवान्‌को वस्त्ररूप धारण करना पड़ा, ऐसी कथा आती है।

श्रीमद्भागवतमें भी गजेन्द्र और ग्राहकी कथा आती है। जब ग्राहसे लड़ते-लड़ते गजेन्द्र थक जाता है और सगे-सम्बन्धियोंकी सहायता निष्फल हो जाती है, तथा मृत्युका समय संनिकट मालूम पड़ने लगता है, तब उसके मनमें पूर्वजन्मका संस्कार जागरित होता है और वह उस दयासागरकी शरण ग्रहण करता है। यथा—

एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि।
जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम्॥
(श्रीमद्भा० ८ । ३ । १)

इससे यह सिद्ध होता है कि किसी भी जन्ममें किया हुआ सत्कर्म, भगवन्नामका स्मरण आदि समय-पर हमारी रक्षा करते हैं। किया हुआ सत्कर्म या दुष्कर्म जन्मान्तरमें समय आनेपर अपना प्रभाव दिखला ही देता है।

जब पूर्वजन्मका पुण्य-संस्कार जागरित हुआ, तब वह गजेन्द्र अपने हाथमें उपहारार्थ एक कमलका पुष्प लेता है और कहता है—

माहक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय
मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय।
स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत-
प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते॥
आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तै-
र्दुष्प्रापणाय गुणसङ्गविवर्जिताय।
मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय
ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय॥
(श्रीमद्भा० ८ । ३ । १७-१८)

वह कहता है, 'मेरे-जैसे शरणागतोंको अज्ञानात्मक पशु-बन्धनसे छुड़ानेवाले, स्वयं मुक्तस्वरूप, अत्यन्त दयालु, नमस्कारमात्रसे आत्मस्वरूपमें लीन कर लेनेवाले तथा आत्माके रूपमें सबके अन्तःकरणमें निवास करने-वाले, संसाररूपमें प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होनेवाले, सबसे महान् भगवान् आपको नमस्कार है।

'हे भगवन्! जो अपने शरीर, पुत्र, सगे-सम्बन्धी, घर, धन और परिवारमें सदा आसक्त रहता है, उसके लिये आपकी प्राप्ति कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव है। आप स्वयं इस त्रिगुणात्मक मायासे सर्वथा निर्लिप्त हैं। जो लोग मुक्त हो गये, वे भी अपने अन्तःकरणमें सदा आपका ध्यान करते हुए ज्ञानस्वरूपका अनुशीलन करते रहते हैं। ऐसे सर्वेश जो आप हैं, आपको नमस्कार है।'

इस तरह गजेन्द्रकी प्रार्थनाके प्रभावसे प्रसन्न होकर भगवान् दयापरवश हो गये और उन्होंने उस तालाबसे गजेन्द्रको ग्राहके साथ बाहर निकाल कर ग्राहके मुखको चीरकर उसे छुड़ा दिया। यथा—

तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य
सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार।
ग्राहाद् विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं
सम्पश्यतां हरिरमूमुचदुस्त्रियाणाम्॥
(श्रीमद्भा० ८ । ३ । ३३)

वेद और पुराण सभी भगवान्‌की स्तुतियोंसे भरे पड़े हैं और जिसने सच्चे हृदयसे भगवान्‌की स्तुति की, उसकी आपत्ति तुरंत दूर हो गयी। इसीसे शास्त्रमें लिखा है—

विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः।
विपद् विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः॥

भगवान्को भूलकर इस नश्वर पदार्थके विनाशी भोगको चाहना ही तो दुःखका मूल है और भगवान्के नामोंका जप, सदाचारका पालन, सबका हित-चिन्तन ही तो सुख है।

भगवान् इस कलियुगमें भी प्रार्थना करनेपर विपत्तिको कैसे दूर करते हैं, इसको मैं एक प्रत्यक्ष घटनाके उदाहरणसे आपको बताता हूँ।

कलकत्तेके आर्यन बैंककी शाखा गयामें खुली थी। यह १९४४ ई०की घटना है। उस बैंकमें एक अर्थाधिकारी (Cashier) आई० ए० पास नियुक्त हुए थे। बैंकके मैनेजर उन्हींके ग्रामके थे। इलाहाबाद बैंकसे १००००) रुपयेका बीमा आया था, जिसको अर्थाधिकारीने लेकर अपनी समझमें तिजोरीमें रख दिया। हजार-हजारके नोट बीमाके लिफाफेमें थे; परंतु भूलसे रुपयेवाला बीमा तो कौंटरपर छूट गया और उसी तरहका दूसरा लिफाफा उसकी जगह भूलसे रख दिया गया। दूसरे दिन जब उनको बीमाका लिफाफा न मिला, तब उन्होंने मैनेजरसे पूछा; क्योंकि कोषगृहमें दूसरे किसीको जानेकी आज्ञा न थी। मैनेजर साहबने पुलिसको खबर दी। पुलिस आयी, परंतु पुलिसने मैनेजरके कहनेपर भी अर्थाधिपति (Cashier) को नहीं पकड़ा।

सायंकालमें Cashier के पिता कलकत्ते जा रहे थे, रास्तेमें अपने पुत्रसे मुलाकात करने उसके डेरेपर गये। उस समय Cashier अपने डेरेपर आ गये थे, उनसे पिताको समाचार ज्ञात हुआ। पिताको देखते ही Cashier तो रोने लगे। परंतु पिताने कहा—'पुत्र! रोओ मत, भगवान् निर्दोषको कभी दण्ड नहीं देते। उनके दरबारमें अन्याय नहीं होता।'

इस तरह लड़केको धैर्य देकर वे और कहीं नहीं गये, स्नान करके पासमें ही एक श्रीराधाकृष्णके मन्दिरमें गये और उन्होंने भगवान्से प्रार्थना की कि 'हे भगवन्! यदि मेरे पुत्रने इस रुपयेको लिया हो तब तो इसको दण्ड मिलना आवश्यक है। यदि यह दोषी नहीं है तो इसका बाल भी बाँका न होना चाहिये।' इस तरह बहुत देरतक उन्होंने भगवान्से न्यायके लिये प्रार्थना की।

दूसरे दिन कलकत्तेके हेडआफिसके मैनेजरने पुलिसको रुपयेका प्रलोभन देकर Cashier को पकड़वानेकी कोशिश की, परंतु पुलिसने उन्हींको डाँटा और कहा कि 'घूस देनेके अपराधमें मैं आपको ही गिरफतार कर लूँगा। भला चाहते हों तो मेरी आफिससे निकल जाओ।'

दस दिनोंतक अर्थाधिकारी गयामें रहे, परंतु पुलिस उनके पास न आयी और न कुछ पूछ-ताछ की। दस दिनोंके बाद वे अपने घर चले गये। उसके बाद उनके पिता भी आठ दिनोंतक इस मामलेकी प्रतीक्षा करते हुए रहे। परंतु जब इसके विषयमें कोई खोज-विनोद न हुई, तब वे भी पुनः घर लौट गये। अपने पुत्रको धैर्य देकर उन्होंने पुनः घरसे कलकत्तेके लिये प्रस्थान किया।

वे जब पुनः गया पहुँचे, तब मैनेजर साहबके चाचाके मकानपर वे ठहरे। वहीं एक नौकरने उनसे कहा कि 'बैंकके जो रुपये आपके पुत्रकी भूलसे बाहर रह गये थे, वे मिल गये।' पूछनेपर उसने बतलाया कि 'मैनेजर साहबको ही मिले और ज्यों-के-त्यों उसी बीमाके लिफाफेमें।'

मैनेजर साहबने कहा कि 'बैंकके उसी Cashier के कौंटरपर मुझको लिफाफा मिला ।'

वस्तुतः वह आपत्ति ऐसी थी कि उस लड़केका जीवन बरबाद हो जाता और १००००) रुपयेमें उसकी सारी सम्पत्ति बिक जाती । परंतु भगवान्‌के सामने सच्चे न्यायके लिये की हुई प्रार्थना सफल हो गयी । उस दिनसे उनके पिता और अर्थाधिकारी दोनों ही भगवान्‌की प्रार्थनापर दृढ़ विश्वास करने लगे ।

अतः जो लोग भगवान्‌की प्रार्थनापर विश्वास नहीं करते, उनकी बुद्धि मन्द है । यदि किसीकी प्रार्थना सफल नहीं होती है तो इसमें कारण उनकी प्रार्थनामें अनन्यताका अभाव रहता है । अथवा स्वार्थवश हम अनुचित वस्तुकी माँग करते हैं ।

भगवान्‌की प्रार्थनामें वह शक्ति है कि जो अनुल्लंघनीय ब्रह्मदण्ड है, उससे भी रक्षा हो जाती है । श्रीमद्भागवतमें विद्याधरोंके राजा सुदर्शनने सौन्दर्य-मदसे मत्त हो कुरूप ऋषियोंको देखकर उनका उपहास किया था । जिससे ऋषियोंको कुछ क्रोधावेश हो गया, और उन लोगोंने उसको सर्पयोनिमें जन्म लेनेका शाप दे दिया । उसको भी भगवान्‌ने अपने चरणकमलके स्पर्शसे पुनः विद्याधरोंका अधिपति बनाया और अन्तमें मुक्त कर दिया । यथा—

स वै भगवतः श्रीमत्पादस्पर्शहताशुभः ।
भेजे सर्पवपुर्हित्वा रूपं विद्याधरार्चितम् ॥

(श्रीमद्भा० १० । ३४ । ९)

उसने भी विद्याधर-स्वरूपको प्राप्तकर भगवान्‌का दर्शन किया और कहा—

शापो मेऽनुग्रहायैव कृतस्तैः करुणात्मभिः ।
यदहं लोकगुरुणा पदा स्पृष्टो हताशुभः ॥

(श्रीमद्भा० १० । ३४ । १४)

अतः प्रार्थनाकी अतुलनीय शक्ति और महत्तापर विश्वास करके सबको प्रार्थनासे लाभ उठाना चाहिये ।

सत्य संकेत

(लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि')

मेरी शक्ति सीमित है और आकांक्षाएँ अनन्त ।

यह शक्ति-कमल········अहंकार-कीचसे उत्पन्न । सर्वग्रासी काल-हस्तीका एक कौर मात्र है !

और ये आकाङ्क्षाएँ ।···· मानो रक्तबीजकी अनन्त दुहिताएँ हैं । एक-एककी पूर्ति अनेकानेकको जन्म देती रहती है ।

परंतु—

परंतु सीमितता असीम हो सकती है, काल-कौर कमल सहस्र-दल कमल बन सकता है, आकाङ्क्षाएँ शून्याङ्कके दर्शन कर सकती हैं । शर्त केवल इतनी है कि तुम मुझे—मुझ नगण्यको अपनेसे—स्वयंसे युक्त होने दो—एक हो जाने दो ।

स्मरण रहे, याचना करना मेरा स्वभाव नहीं है ।

यह कथन-कृति केवल सत्यके प्रति संकेत भर है ।

बोलो, क्या कहते हो प्रियतम ?

मधुर

उदय हुए जब श्रीवृन्दावन-
चन्द्र पूर्णतम चन्द्रस्वरूप।
उज्ज्वल स्निग्ध सुधामयि शीतल
किरणें लहरा उठीं अनूप॥
पूर्ण पूर्णिमा प्रगटी पावन,
हुआ अविद्या-तमका नाश।
प्रेम-प्रभा हुई उद्भासित,
छाया शुद्ध सत्त्व-उल्लास॥
पावन यमुना-पुलिन प्रकट हो,
छेड़ी मोहिनि मुरली-तान।
किया श्यामने प्रेममूर्ति व्रज-
सुन्दरियोंका प्रिय आह्वान॥
भूल गयीं अग-जगको, भूलीं
देह-गेहका सारा भान।
जो जैसे थी, वैसे ही चल—
पड़ी, छोड़ लज्जा, भय, मान॥

जब परिपूर्ण चन्द्रमास्वरूप श्रीवृन्दावनचन्द्र कृष्णचन्द्र प्रकट हुए, तब उनकी उज्ज्वल, स्निग्ध, अमृतमयी शीतल अनुपम किरणें सब ओर लहराने लगीं। आज सबको पवित्र करनेवाली पूरी पूर्णिमा प्रकट हो गयी, अविद्या-अन्धकारका नाश हो गया। प्रेमकी प्रभा उद्भासित हो उठी और सर्वत्र विशुद्ध सत्त्वमय उल्लास छा गया। जब यमुना-तटपर प्रकट होकर श्यामसुन्दरने मुरलीकी मोहिनी तान छेड़ी और उसके द्वारा प्रेममूर्ति व्रजसुन्दरियोंका प्रिय आवाहन किया, तब उसे सुनते ही वे सब अग-जगको भूल गयीं। वे अपने घर-शरीरका सारा भान भूल गयीं और जो जहाँ जैसे जिस अवस्थामें थी, वह वहाँसे वैसे ही उसी अवस्थामें सारी लज्जा, भय और मान छोड़कर चल पड़ी।

होता उदय मधुर रस नव-नव
रूपोंमें जब कृष्णानन्द।
रुक पाता न पलक प्रेमीका
तब रस-लोलुप मन स्वच्छन्द॥
नहीं खींच पाता फिर उसको
भुक्ति-मुक्तिका कोई राग।
प्रेम-सुधा-रस-मत्त दौड़—
पड़ता, वह सहज सभी कुछ त्याग॥
प्रियतमके प्रिय मधुर-नाम-गुण-
लीला-कथा सुधा-रस मग्न।
सर्व समर्पित होता उसका
होता सहज मोह-भ्रम भग्न॥

जब मधुर-मधुर कृष्णानन्द-रस नये-नये रूपोंमें प्रकट हो उठता है, तब प्रेमीजनका उस रसका लोभी स्वच्छन्द मन एक पल भी रुक नहीं पाता। फिर उस प्रेमीको भोग-मोक्षका कोई भी राग खींच नहीं सकता और वह प्रेम-सुधा-रसमें मत्त प्रेमी सहज ही सभी कुछ त्यागकर दौड़ पड़ता है। वह प्रियतमके प्रिय मधुर नाम-गुण-लीला-कथा-सुधा-रसमें निमग्न हो जाता है, फिर उसका सहज ही सारा मोह-भ्रम भङ्ग हो जाता है और सर्वस्व प्रियतमके समर्पित हो जाता है।

राधामुख्या भावमयी सब
व्रजसुन्दरियाँ कर अभिसार।
पहुँचीं तुरत श्याम-चरणोंमें
उन्मादिनि हो मधुर उदार॥
किया समर्पण परम मुदित मन,
सहज अखिल जीवन आचार।
बनी सर्वथा एकमात्र वे
प्रियतम सुख-सूरति साकार॥

अतएव राधा जिनमें मुख्य हैं, वे सब व्रजसुन्दरियाँ—गोपरमणियाँ उन्मादिनी होकर प्रियतमके लिये निकल पड़ीं और तुरंत ही मधुर एवं उदार प्रियतमके चरणोंमें जा पहुँचीं। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने अत्यन्त प्रमुदित मनसे सहज ही अपना जीवन तथा जीवनके अखिल आचार—प्रियतमके प्रति समर्पण कर दिये और वे सब सर्वथा एकमात्र प्रियतमके सुखकी साकार मूर्ति बन गयीं।

सहज अमित सौन्दर्य, परम
माधुर्य, अतुल ऐश्वर्य निधान

पूर्णकाम निष्काम सहज जो
आत्माराम स्वयं भगवान ॥
गोपीके उस त्यागशुद्ध रस
मधुर दिव्यका करने पान।
लालायित हो उठे परम
आतुर हो रसदाता रसखान ॥

जो सहज ही अपरिमित परम अतुलनीय सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्यके निधान हैं, जो सहज ही पूर्णकाम, निष्काम और आत्मारामस्वरूप स्वयं भगवान् हैं, वे सबको रस प्रदान करनेवाले, रसके खान आज गोपीके उस त्यागके द्वारा विशुद्ध हुए दिव्य मधुर रसका पान करनेके लिये परम आतुर होकर लालायित हो उठे।

प्रेमीजन-मन-रञ्जन प्रभुने
किया उन्हें सादर स्वीकार।
आत्माराममयी रसक्रीडा
विविध विचित्र रची सुखसार ॥
किया कराया दिव्य परम रस-
दान-पान अति कर सम्मान।
प्रति गोपीको दिया परम सुख
धर अनन्त वपु दिव्य महान ॥

उन प्रेमीजनोंके मनका रञ्जन करनेवाले प्रभुने उन श्रीगोपाङ्गनाओंको आदरपूर्वक स्वीकार किया और सुखकी साररूपा आत्माराममयी विविध विचित्र रस-क्रीडाओंकी रचना की। अत्यन्त सम्मान करके उनको दिव्य परम रसका दान किया और स्वयं पान किया तथा अनन्त दिव्य महान् स्वरूप प्रकट करके प्रत्येक गोपीको परम सुख प्रदान किया।

प्रेमभिक्षु बन स्वयं किया
गोपी-प्रदत्त सुख अङ्गीकार।
बोले—प्रेमरमणियो! यह
निरवद्य तुम्हारा रस-व्यवहार ॥
घरकी तोड़ अटूट बेड़ियाँ
तुमने मुझे भजा अविकार।
सदा बढ़ाता रक्खेगा यह
मुझपर सुखमय ऋणका भार ॥
नहीं चुका सकता मैं बदला
इसका देव-आयु—चिरकाल।
तुम्हीं स्व-साधुतासे कर सकतीं
मुझे कभी ऋणमुक्त निहाल ॥

अखिललोकमहेश्वर स्वयं भगवान्ने प्रेमभिखारी बनकर गोपियोंके दिये हुए सुखको अङ्गीकार किया। फिर वे बोले—'प्रेमसुन्दरियो! तुम्हारा यह विशुद्ध प्रेम-रसका व्यवहार जो तुमने घरकी अटूट श्रृङ्खलाओंको तोड़कर मेरा निर्विकार (स्वसुखवाञ्छारहित) भजन किया है, मुझपर सदा ही सुखमय ऋणका भार बढ़ाता रहेगा। (प्रेमी भक्तके प्रेम-ऋणका बढ़ता हुआ बोझ प्रेमास्पद अनन्त सुखस्वरूप भगवान्के लिये बड़ा सुखमय होता है।) मैं देवताकी आयुमें भी चिरकालतक तुम्हारे इस ऋणका बदला नहीं चुका सकता, तुम्हीं चाहो तो अपनी साधुतासे मुझे कभी ऋणमुक्त करके कृतार्थ कर सकती हो।

राधा आदि गोपरमणी सब
सुनकर प्रियतमकी यह बात।
हुईं चकित वे लगीं देखने
अपलक दृग प्रिय-मुख-जलजात ॥
देते दिव्य अनन्त परम सुख,
निजको ऋणी मानते आप।
कैसा शील स्वभाव विलक्षण,
कैसा हृदय उदार अमाप ॥

श्रीराधा आदि गोपाङ्गनाएँ सब प्रियतमकी यह बात सुनकर चकित हो गयीं और निर्निमेष नेत्रोंसे प्रियतमके मुख-कमलकी ओर निहारने लगीं। उन्होंने कहा—'हमलोगोंको स्वयं दिव्य अनन्त परम सुख देते हैं, पर उलटा मानते हैं—अपनेको ऋणी। प्रियतमका कैसा शील-स्वभाव है और कैसा उनका विशाल उदार हृदय है!'

सेवा

[कहानी]

(लेखक—श्री'चक्र')

'यहाँ कोई धर्मात्मा है ?' इस युगमें बड़ा अटपटा प्रश्न है यह, किंतु ये बाबाजी लोग कहाँ सीधे ढंगसे बात करना जानते हैं । इनकी रहनी टेढ़ी, इनका वेश अटपटा, इनकी वाणी अटपटी और इनका आराध्य टेढ़ी टाँगवाला । भला यह भी कोई बात हुई कि कोई भरी भीड़से पूछने लगे कि 'उसमें कोई भला आदमी है ?'

अकाल पड़ा है । पिछले वर्ष इन्द्रदेवने इतनी अधिक कृपा की कि भूमिमें पड़ा बीज उगकर भी सड़ गया । अतिवृष्टि किसी प्रकार झेल ली गयी, किंतु इस वर्ष तो मेघोंके देवता भूल ही गये हैं कि इस ओर भी उनकी सेना आनी चाहिये । इस प्रदेशमें भी प्राणी रहते हैं और उन्हें भी जल ही जीवन देता है । आषाढ़ निकल गया तबतक आशा थी; किंतु अब तो श्रावण भी सूखा ही समाप्त होने जा रहा है ।

घरोंमें अन्न नहीं है । खेत और चरागाहोंमें तृण नहीं है । सरोवर सूख चुके हैं । कूपोंमें कीचड़ मिला पानी प्यास बुझानेके लिये रह गया है । कितने दिन वह भी काम चला सकेगा ? ऐसी अवस्थामें पशु कितने मरे, कौन गिने । जिसे जहाँ सूझा, वह उधर निकल गया परिवार लेकर । पूरा प्रदेश उजड़ने लगा है । वृक्षोंके पत्ते और छाल जब आदमीका आहार बनने लगें, विपत्ति कितनी बड़ी है, कोई भी समझ सकता है । सरकारी सहायता आयी है । कुछ संस्थाएँ भी सेवाके क्षेत्रमें उतरी हैं; किंतु तप्त तवेपर कुछ शीतल बूँदें पड़कर अधिक उष्णता ही तो उत्पन्न करती हैं ।

यज्ञ-अनुष्ठान तो हुए ही, अनेक लोकप्रचलित टोटके भी हुए; किंतु गगनके नेत्रोंमें अश्रु उतरे नहीं । देवता रुष्ट हुए सो तुष्ट होनेका नाम ही नहीं लेते । ऐसे समयमें सबसे भारी विपत्ति आती है भिक्षुकोंपर । वे बेचारे बहुत पहिले भाग गये । किंतु कुछ अक्खड़ होते हैं । हनुमत्-टीलेके बाबा बजरंगदास ऐसे ही अक्खड़ हैं । उनकी कुटिया तो आजकल क्षुधार्तोंके लिये कल्पवृक्ष बन गयी है । मध्याह्नमें पवन-पुत्रको नैवेद्य अर्पित करके सदाकी भाँति अब भी बाबाजी उच्चस्वरसे 'भण्डारमें भगवत्प्रसादकी सीताराम !' घोषित करते हैं और उस समय जो कोई भोजनके लिये आ जाय, उसे अपने-आप पंगतमें बैठनेका अधिकार है । इन दिनों प्रतिदिन दो-ढाई सौ व्यक्ति भोजन करते हैं ।

पता नहीं कहाँसे आता है इतना अन्न इन जटाधारीके पास । पूछनेपर एक दिन कहने लगे—'यह टेढ़ी टाँगवाला गदाधारी देवता किसलिये यहाँ खड़ा है । भूमिमें अन्न नहीं होगा तो देशका प्रशासक भूखों मरेगा; किंतु हनुमन्तलालके लाड़िलोंके लिये आकाशको अन्नकी वर्षा करनी होगी ।'

ऐसे अडिग अक्खड़ अवधूतने जब आसपास सबको सूचना भेजकर कुटियापर बुलवाया, बड़ी आशा हो गयी थी ग्रामके श्रद्धाप्राण लोगोंको । अवश्य बाबाजी इस दैवी विपत्तिका कोई उपाय पा चुके हैं । किंतु जब सायंकाल श्रीहनुमान्जीके सम्मुख आसपासके आठ गाँवोंके लोग एकत्र हो गये तो बाबाजी पूछते हैं— 'यहाँ कोई धर्मात्मा है ?'

कोई और धर्मात्मा हो या न हो, बाबाजी तो हैं। अब देवताके सम्मुख झूठ भी कोई कैसे बोले । धोतीके भीतर सभी नंगे । किससे कुछ ऊँचा-नीचा नहीं होता

है । किंतु बाबाजी तो एक-एककी ओर देखने लगे हैं । चुपचाप नेत्र नीचे कर लेनेके अतिरिक्त किसीके पास और क्या उपाय है ।

'श्रीमारुति प्रभुका आदेश है कि यहाँ इस प्रदेशमें जो एकाकी धर्मात्मा है, उसका आश्रय लिया जाय ।' बाबाजी कह रहे थे—'केवल वही इस अकालको टाल सकता है । उसके असम्मानके कारण यह विपत्ति आयी है । देवता भी धर्मका आश्रय लेनेवालेका अपमान करके कुशलपूर्वक नहीं रह सकते हैं ।'

'कौन हैं वे ?' सबके हृदय सोचने लगे हैं । कोई भी तो ध्यानमें नहीं आ रहा है । कोई साधु आसपास अब इन महाराजको छोड़कर रहे नहीं । जो दो-तीन कुटिया बनाकर रहते भी थे, तीर्थयात्रा करने चले गये हैं । कोई ब्राह्मण, कोई विद्वान्, कोई अहीर, काछी आदि भगत—लेकिन इनमेंसे किसीका अपमान होनेकी बात तो सुनी नहीं गयी । ऐसे व्यक्तियोंके प्रति तो ग्रामके लोगोंकी सहज श्रद्धा है । अब इस अकालके समयमें किसीको कुछ देनेसे किसीने मना कर दिया हो तो हो सकता है; किंतु क्या विवश मनुष्यका यह ऐसा अपराध है कि उसपर इतना भयंकर देवकोप पूरे प्रदेशको भोगना पड़े ?

'श्रीहनुमान्‌जीने कहा है कि उसका पता लगाना होगा ।' बाबाजीको स्वप्नमें आदेश हुआ है, यह वे बता गये । उन्होंने यह भी कह दिया कि इससे अधिक स्पष्टीकरणकी आशा अब करना नहीं चाहिये । देवताओं-को परोक्ष-कथन ही प्रिय है । 'आप सब प्रयत्न करें । मैं भी कल प्रातःकालसे पता लगानेमें लगूँगा ।'

× × ×

'तुमने कैसे सीखा इस अद्भुत उपासनाको ?' बाबा बजरंगदास आज इस हरिजन बस्तीके एक कोनेपर बनी झोपड़ीके द्वारपर आ गये हैं । श्रीपवनकुमारने जिनका संकेत किया, वे धर्मात्मा कौन हैं, यह पता लगानेकी धुन है उन्हें । जो आस्तिक नहीं है, भगवान्‌में जिसकी आस्था नहीं है, वह तो धर्मात्मा हो नहीं सकता । गाँवोंमें बसनेवाले लोग एक-दूसरेसे अच्छी प्रकार परिचित होते हैं । बाबा बजरंगदास प्रायः आसपासके ग्रामीणोंको व्यक्तिगत रूपसे जानते हैं । उनमें जहाँ भी कुछ आशा की जा सकती थी, सबके समीप वे हो आये हैं । आज अचानक उन्हें स्मरण आया कि द्विजाति तथा दूसरे लोगोंसे मिलनेकी धुनमें उन्होंने हरिजन-बस्तियोंकी ओर ध्यान ही नहीं दिया है । स्मरण आते ही वे चल पड़े थे इस झोपड़ीकी ओर ।

पूरी चमारटोलीकी झोपड़ियाँ सटकर बनी हैं; किंतु यह झोपड़ी सबसे थोड़ी दूर है । केवल नाम ही इस झोपड़ीके स्वामीका अलगू नहीं है, वह दूसरोंसे सब बातोंमें कुछ भिन्न है । गाँवोंकी हरिजन-बस्तियोंमें आज-कल दो भगत हैं । वे भूमिपर सोते हैं । अपने हाथसे बना भोजन और अपने हाथसे खींचा जल काममें लेते हैं । किंतु बाबा बजरंगदास उन्हें जानते हैं । वैसे भी वे लोग प्रायः प्रतिदिन हनुमत्-टीलेपर पहुँचते हैं । लेकिन अलगू सबसे भिन्न है । उसे अपने लँगड़े बछड़े-से ही अवकाश नहीं कि कहीं आये-जाय । उसका स्मरण आते ही बाबाजी चौंके थे ।

सुनते हैं कि बेटेका ब्याह करके अलगूका बाप मरा था, किंतु स्त्री टिकी नहीं । वह कहीं और चली गयी । अलगू तबसे अकेला है । जूते बनाकर पेट पाल लेता रहा है वह; किंतु अब यह धंधा भी चल नहीं रहा है । अपनी झोपड़ीमें वह अकेला है, यदि उसके लँगड़े बछड़ेको आप उसका साथी न गिनें । अब वह लकड़ियाँ चुनता है, उपले लाता है और कुछ न मिले तो शीशमके पत्ते, झरबेरी, बेल, उदुम्बरके पके फलोंसे अपना काम चला लेता है ।

एक गाय थी अलगूके; किंतु अति वृष्टिमें वह भी ठंडसे अकड़कर चल बसी। गायके बछड़ेका एक पैर बचपनमें ही टूट गया दौड़ते समय किसी दरारमें पड़-कर। किसी काम आ सके, ऐसा वह रहा नहीं; किंतु अलगू तो उसे देवता मानता है। पहिले वह गायकी पूजा करता था, तब कुछ समझमें आनेकी बात भी थी। गौ माता हैं। विद्वान् पण्डित लोग भी गायको हाथ जोड़ते हैं। गायकी पूजा करते भी लोगोंको देखा गया है। किंतु लँगड़े बछड़ेकी पूजा होती कहीं किसीने सुनी है? गाय मरी तो अलगू उसके बछड़ेकी पूजा करने लगा। वह कहता है—'गाय देवी माता हैं तो उनका बेटा देवता कैसे नहीं है!'

आजकल फूल कहीं मिलते नहीं। अलगू आम, नीम या शीशमके पत्तोंकी माला ही बछड़ेको पहिना देता है। वह उसके चारों खुर धोकर पीता है। बछड़े-को दण्डवत् करता है। बछड़ेके छोड़े घास-पत्तोंमेंसे कुछ-न-कुछ पत्ते खा लिया करता है। रातमें बछड़ेके पास ही भूमिपर सोता है। बछड़ा गोबर करे या मूत्र—तुरंत स्वच्छ करेगा। अपने गमछेसे बछड़ेको पोंछता रहेगा। बछड़ा हुंकार करे तो दोनों हाथ जोड़कर उसके सामने सिर झुकायेगा।

लोग अलगूका परिहास करते हैं। बाबा बजरंग-दासने उसकी बातें सुनी हैं। बहुत लोग उसे 'बछड़ा भगत' कहकर चिढ़ाते हैं। इस वर्ष कुओंका जल घटने लगा, किंतु अलगूकी कुइयाँमें पानी आज भी नहीं घटा है। हरिजनबस्तीमें सरकारी कुआँ दो वर्ष पहिले बना है। उससे पहिले हरिजन गाँवके बाहरके कुएँसे पानी लाते थे। पानी लाने गया था अलगू उस कुएँपर तो गाँवके ठाकुरोंके खेतमें पानी जा रहा था उस कुएँसे। अलगूने मोटका पानी न लेकर कुएँसे खींचना चाहा तो ठाकुरने कुछ कहा-सुना। लौटकर अलगू यह कच्ची कुइयाँ खोदनेमें लग गया था। सात दिनमें इस कुइयाँमें पानी आ गया था और हरिजनोंके लिये पक्का कुआँ बननेतक यह कुइयाँ हरिजनोंकी पूरी बस्तीको जल पिलाती थी। अब थोड़ी-सी भूमि घेर रक्खी है अलगूने। दूसरा कोई होता तो उसमें चार बेल लगाता कुम्हड़े, तोरईकी; किंतु अलगू उसमें कभी ज्वार बोता है, कभी अरहर, कभी सन और कुछ न हो तो घास अपने बछड़ेका पेट भरनेको छोड़कर उसे दूसरी चिन्ता ही नहीं रहती। इस अकालमें भी उसका घेरा घाससे हरा है। सबेरे-शाम वह पानी खींच-खींचकर थक जाता है उस घेरेको गीला रखनेके लिये।

आज बाबा बजरंगदासको अचानक स्मरण आया है कि अलगू धर्मात्मा है। वह कहाँ कोई नौकरी-व्यापार करता है कि उसे कुछ काला-सफेद करनेको विवश होना पड़े। अचानक ही कल रात बाबा बजरंग-दासने एक पोथी उलटते हुए पढ़ा—'वृषभ धर्मका रूप है।' उन्हें स्मरण आया कि पिछले वर्ष जो भागवती पण्डित आश्रमपर कथा बाँचने आये थे, उन्होंने भी कुछ ऐसा ही कहा था कि 'राजा परीक्षित्को बैलके रूपमें धर्मके दर्शन हुए। उस बैलके तीन पैर टूटे हुए थे।' अलगूका बछड़ा भी तो लँगड़ा है। उसके तीन पैर नहीं टूटे हैं तो क्या हुआ, वह पूरा धर्म नहीं सही, धर्मका रूप तो है। अलगू उस बछड़ेकी ही पूजा करता है। तब कहीं हनुमान्जीका संकेत............।

अलगू तो हक्का-बक्का रह गया कि उसकी झोपड़ीके द्वारपर ये बाबाजी आये हैं। उसके पास तो उन्हें आसन देने योग्य भी कुछ नहीं है। दूर पृथ्वीपर सिर रखकर वह काँपता हुआ खड़ा हो गया है। बाबाजी-की दृष्टि अलगूके बछड़ेपर है। अब यह दो वर्षका बछड़ा बैल लगता है। गलेमें पत्तोंकी माला, मस्तकपर सफेद मिट्टीका टीका और पासमें गुग्गुलकी धूप जल

रही है । अलगू अपनी पूजासे ही उठकर आया है । बाबाजीने फिर पूछा—'यह तुम्हें किसने बताया कि बछड़ेकी पूजा किया करो ?'

'मुझ चमारको भला, कौन बतायेगा'—अलगू उसी प्रकार दीन स्वरमें बोला । 'बाप गायकी पूजा करता था । मैं भी बचपनसे वही करने लगा । एक बार काशीजी गया था । दशाश्वमेधघाटकी सीढ़ियोंपर एक नंगे संत रहते थे । कोयलेकी भाँति वे काले थे और उनकी आँखें लाल-लाल थीं । उन्होंने सीढ़ियोंपर ही एक काला बछड़ा लोहेकी जंजीरमें बाँध रखा था । बछड़ेके गलेमें फूलोंकी माला मैंने देखी थी । कोई बाबा-जीको पूड़ी, मिठाई या फल देता था तो बछड़ेके आगे रख देते थे । बछड़ा खा लेता तो उसमेंसे बचा-खुचा स्वयं खा लेते । बछड़ा सूँघकर छोड़ देता था तो फेंक देते थे ।'

'ओह, तो उन महात्माने तुम्हें यह बताया है । तुम उनके शिष्य हो ।' बाबा बजरंगदासने श्रद्धापूर्वक कहा ।

'वे तो मौन रहते थे । मुझ-जैसे पापी चमारको भला, वे चेला क्यों बनाते ।' अलगू सहज भावसे बोला । 'मैं तो दूरसे उनके सामने मत्था टेककर चला आया था । मेरी गौ माता मर गयीं तो मुझे उन महात्माकी याद आ गयी । मैं गौ माताके बछड़ेकी सेवा करने लगा । एक बार एक पण्डितजीने बताया था कथामें कि कलियुगमें सेवा ही बड़ा धर्म है । मुझ नीच जातिसे आप-जैसे महात्मा या कोई ब्राह्मण तो सेवा करायेंगे नहीं, गौ माताके बेटेकी सेवा करता हूँ ।'

'भाई अलगू, मैं साधु हूँ और तुम्हारे दरवाजेपर आया हूँ ।' बाबा बजरंगदासने विनयके स्वरमें कहा । 'तुमसे भिक्षा माँगता हूँ । साधुको नहीं करोगे तो पाप होगा । तुमको कभी ठाकुरने गालियाँ दी थीं, उनको क्षमा कर दो ।'

'इसमें क्षमाकी बात क्या है । चमारको तो बड़े लोग गाली देते ही हैं ।' अलगू बड़ी दीनतापूर्वक बोला । 'महाराज, ठाकुर-ब्राह्मणोंकी गाली तो हमारे लिये आशीर्वाद है । आप कहाँकी कितनी पुरानी बात उठा लाये हैं । मैं तो उसी दिन भूल गया उस बातको ।'

'तुम भूल गये; किंतु तुम्हारे ये धर्मदेवता नहीं भूले हैं । यह अकाल इस प्रदेशपर इनके कोपसे आया है ।' बाबाजीने हाथ जोड़ दिये । 'मैं तुमसे क्षमा माँगने, प्रार्थना करने आया हूँ कि लोगोंपर, यहाँके पशु-पक्षी आदि सभी प्राणियोंपर दया करो । तुम इनसे प्रार्थना करोगे तो अवश्य वर्षा होगी ।'

'महाराज ! मेरे प्रार्थना करनेसे वर्षा हो जाय, लोगोंकी विपत्ति मिटे तो मैं क्यों प्रार्थना नहीं करूँगा । मैं ही क्या कम विपत्तिमें हूँ वर्षा न होनेसे ?' अलगूने भूमिपर सिर रखा । 'किंतु आप मुझे अपराधी मत बनाओ । मुझे आप आशीर्वाद दो ।'

बाबा बजरंगदासके विदा होते ही अलगू अपने लँगड़े बछड़ेके पैरोंके पास हाथ जोड़कर बैठ गया—'देवता ! तुम वर्षा करा सकते हो ! वर्षा कराओ देवता ! पानी बरसने दो । सबकी विपत्ति दूर होने दो । वह आँख बंद किये बोलता जाता था । उसे पता भी नहीं था कि वायुका वेग कब बढ़ा । कब आकाश भूरे घने मेघोंसे ढक गया । उसने तो चौंककर तब बछड़ेके सम्मुख मस्तक रखा, जब मेघ-गर्जनके साथ झड़ीकी बूँदोंने द्वारसे आकर उसकी पीठ भिगो दी ।

बनजारा बनिये !

(लेखक—श्रीसुन्दरलालजी बोहरा)

एक बार आकाश कर्णभेदी चीखोंसे सिहर उठा। भगवान् दत्तात्रेयने ऊपरकी ओर देखा। एक चीलके पीछे असंख्य चीलें प्राणपणसे लगी हुई थीं। चीलका बुरा हाल था। किंतु दूसरे ही क्षण पीछा करनेवाली सारी चीलें धरतीकी ओर झपट पड़ीं। चीलने अपनी चोंचमें जकड़ा हुआ मांसखण्ड धरतीपर गिरा दिया था। वह भयरहित होकर शान्तिसे वृक्षकी डालपर बैठ गयी। भगवान् दत्तने उसे अपना गुरु स्वीकार किया।

परिग्रह-प्रवृत्ति ही हमारी मानसिक अशान्तिका कारण है। हमें मानव-प्रकृतिकी शुद्धतामें संदेह है। भविष्यको हम अपना ही मान बैठे हैं। अपनी वर्तमान आवश्यकताका हमें भान है, फिर भी हम संग्रह करते हैं। हम स्वयं किसी चीजका सुखपूर्वक उपभोग नहीं कर पाते; अन्य लोग हमारे संगृहीत पदार्थोंकी ओर आँख उठाकर भी देख लें, यह हम सहन नहीं कर सकते। हम अपने आपको मृत्युंजय मान बैठे हैं।

सिकंदर महान्‌ने मृत्युसे पूर्व अपने सेवकोंको आदेश दिया कि उसके दोनों हाथ कफनसे बाहर रक्खे जायँ ताकि परिग्रही लोग जान सकें कि अन्तमें उनका कौन सहयोगी होता है। सिकंदरने अन्तिम बार एक नजर भर इस दुनियाका वैभव देखा। उर्वशीके समान असंख्य ग्रीक सुन्दरियाँ; सिकंदरके लिये हर क्षण मर मिटनेको तत्पर चमचमाते हुए हथियारोंसे युक्त, कतारोंमें खड़े हुए ग्रीक योद्धा; हीरे-जवाहिरातोंसे छलकती हुई संदूकें। और सिकंदरने सदाके लिये आँखें मूँद लीं। उसकी दोनों हथेलियाँ कफनसे बाहर चित पड़ी थीं। सच ही कहा गया है—

इकट्ठे गर जहाँ के जर, सभी मुल्कों के माली थे।
सिकंदर जब गया दुनियासे, दोनों हाथ खाली थे॥

क्या सिकंदर महान्‌की आकाङ्क्षाओंसे भी हमारी एषणाएँ—आकाङ्क्षाएँ तीव्रतर हैं ? क्या उस महान् यूनानीसे भी अधिक हम वैभव-सम्पन्न हैं ?

किंतु हम लाचार हैं। निन्यानबेके चक्करमें हमें और कुछ दीखता ही तो नहीं है। रात-दिन हम 'हाय माई, अन्न थोड़ा' की रट लगाये हुए हैं। सुख हमारे पास है, पर हम उसे सट्टा-बाजार और सिनेमा-घरोंमें खोजते फिरते हैं।

एक सेठके भवनके नीचे एक मोचीकी दूकान थी। दिनभर मोची जूते बनाता रहता और साथ ही सा[थ] भजन भी गाता रहता। ऊपर पलंगके मुलायम गद्दे[पर] पड़े रहनेवाले सेठ हर क्षण मानसिक अशान्ति औ[र] चिन्ताकी आगमें जलते रहते। मोचीके भजने[से] सेठको बड़ी राहत मिली। उसने खुश होकर मोचीको इनामके रूपमें सौ रुपये दिये। मोची बड़ा प्रस[न्न] हुआ। तबसे उसे हरदम यही चिन्ता रहने लगी [कि] कब दो सौ रुपये पूरे हों। यों करते-करते उस[का] भजन गानेका क्रम टूट गया। सेठने जब दो-[चार] दिनतक मोचीको गाते हुए नहीं सुना तो उसने इस[का] पता लगवाया। मोचीको भी तो अब सेठ[की] बीमारी लग चुकी थी।

भगवान्‌के प्रति हमारा रुझान भी उस मो[ची] जैसा ही है।

पग-पगपर हमें सीख मिलती है, फिर भी हम [...] और ज्ञानकी खोजमें भटकते हैं। एक मोदीकी दूका[न में] अनेक प्रकारके मेवे पड़े रहते हैं, किंतु मोदी[की] जीभको उससे कोई सरोकार नहीं; एक हलवाई मिठा[ई] बनाता है, किंबहुना रात-दिन मिठाइयोंसे ही [...]

रहता है, किंतु उसकी जीभसे शायद ही लार टपकती हो। एक ग्वाला दिनभरमें सैकड़ों गौएँ चराता है; किंतु शामको जब वह अपने घर लौटता है, तब उसके पास सिवा एक लाठीके और कुछ नहीं बचता; एक बनजारा अथवा घुमक्कड़ व्यक्ति देश-विदेशोंमें भ्रमण करता है, किंतु कहीं एक जगह घर बनाकर नहीं बैठता। महर्षि लोमशको अनेक बार इन्द्रासनकी मनुहार की गयी थी, पर वे तो हमेशा ही सिरपर एक चटाई ढोनेवाले ही बने रहे।

क्या कोई धनिक व्यक्ति रुपयोंकी दीवारोंसे बनी हुई जेलमें बंद रहकर भी नहीं चाहेगा कि एक नये पैसे-रूपी कील उस जेलके किवाड़के किसी छेदमें न लगायी जाय, भले ही वह कील (कमरेमें हवाका अभाव हो जानेके कारण) उसकी मौतका कारण बने ?

ठीक ही कहा गया है—

जीर्यन्ते जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।
चक्षुश्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका तरुणायते॥

व्यक्तिमें वित्तैषणा अथवा संग्रह-प्रवृत्तिका जन्म समुदायमें रहनेसे होता है। कई बार दुर्भिक्षका सामना करते रहनेके कारण भी व्यक्ति संग्रहशील बन जाता है। अपनी लोकैषणाकी तृप्तिके लिये भी लोग अधिकाधिक वस्तुओंका संग्रह करते हैं। किंतु सही शब्दोंमें, अधिक संग्रहका नाम ही अधिक दुःख है।

संग्रहशील व्यक्तिको सदा चोरों-लुटेरोंका भय बना रहता है। सरकारकी ओरसे भी अधिकाधिक टैक्सकी माँग ऐसे ही लोगोंसे की जाती है। परिवारवाले भी ऐसे ही व्यक्तियोंके प्रति कृत्रिम सेवाभाव प्रदर्शित-कर धन ऐंठना चाहते हैं। यह निस्संदेह है कि एक संग्रहशील व्यक्ति मानसिक रूपसे कभी शान्त नहीं रह सकता; शारीरिक रूपसे भी वह हीन ही बना रहता है। फिर भी वह 'कुछ और' की आदतको नहीं त्याग सकता। सच है—

को वा दरिद्रो हि विशालतृष्णः।

एक परिग्रही व्यक्ति सदा बेचैन रहता है। मृत्युके बाद भी उसके द्वारा संगृहीत पदार्थ परिवारवालोंमें कलहका कारण बनते हैं। सत्य है—

अर्थानामर्जने दुःखमर्जितानां च रक्षणे।
नाशे दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थाः कष्टसंश्रयाः॥

फिर भी हम कष्टदायक काञ्चनकी कामना करते रहते हैं। हममेंसे अधिकांश लोग अर्थकी कामनासे ही धार्मिक ग्रन्थोंका पाठ करते हैं।

शिवजी अन्नपूर्णाके पति हैं, फिर भी अर्द्धनग्न और खप्परधारी हैं। यही सच्चा अनासक्त भाव है।

पानी खींचनेकी एक डोली कुएँसे भरी हुई निकलती है, किंतु बाहर आकर घड़ेको ही भरती है। यही सच्चा जीवन है।

हमें कोठारी बननेकी अपेक्षा कबाड़ी बनना चाहिये। एक कोठारीको सोते-बैठते अनेकों चाबियोंको अपनी कमरसे लटकाये हुए रहना पड़ता है; एक कबाड़ी (नीलाम करनेवाला) इधरसे माल लाता है और उधर रवाना कर देता है। रातको सुखकी नींद लेनेका नुस्खा तो एक कबाड़ी ही बता सकता है।

आकाशमें बादलोंका झुंड एकत्रित होता है। गर्जना करके बादल दुनियाको यह दिखाना चाहते हैं कि विश्वके पालनहार वे ही हैं। किंतु दूसरे ही क्षण लपलपाती हुई बिजली उनकी छातीको दागती हुई उन्हें सावधान करती है,—'आपका दम्भ व्यर्थ है। आपका जन्म गर्जना करनेको नहीं हुआ है।' बादलोंको पानी-पानी होना ही पड़ता है।

और तो और, हम दूसरा श्वास नहीं ले सकते जब-तक पहले श्वासद्वारा ली हुई हवाको वापिस न निकालें। फिर भी हम पदार्थोंका संग्रह करें ?

पहाड़ीको तोड़कर खानका पता लगाया जाता है, किंतु किसी सपाट सड़कके बीचमें कुआँ नहीं खोदा जाता।

रेशमका कीड़ा अपनी महत्ता सिद्ध करनेके लिये अपने चारों ओर धागा बुनकर लपेटता है। कालान्तरमें यही धागा उसे खौलते हुए पानीमें ला डालता है। ठीक उसी प्रकार एक परिग्रही व्यक्ति पदार्थोंकी संग्रहरूपी सरायका स्वामी बनकर बैठता है। ठग लोग ऐसे ही सरायवालोंको लूटा करते हैं।

एक तराजू दिन भरमें अनेक प्रकारके पदार्थ तौलता है। किंतु शामको उसकी स्थिति वैसी ही रहती है जैसी दूकान खुलते समय थी। यही सच्चा जीवन है।

महाराजा भर्तृहरिको वैभवका कोई अभाव नहीं था। पर आध्यात्मिक दृष्टिसे वे सदा ही अशान्त बने रहते थे। अन्ततः उन्हें भी स्वीकार करना ही पड़ा—

सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्।

विदेहराज जनकके जीवनका एक प्रसङ्ग है। अपने गुरु याज्ञवल्क्यके आश्रमपर वे ज्ञान-श्रवणमें तल्लीन थे। आश्रमपर श्रोताओंका जमघट लगा हुआ था। इसी बीच नगरसे किसी व्यक्तिने आकर नगरमें आग लगनेका समाचार दिया। एक-एक करके श्रोतागण भागने लगे। पर जनक उपदेश सुननेमें तल्लीन रहे। नगरसेवकोंने पुनः आकर समाचार दिया कि अग्निकी लपटें राजमहलतक पहुँच चुकी हैं। किंतु विदेह तो फिर भी कथा-श्रवणमें मग्न! अग्नि जनकपुरका कुछ भी नुकसान नहीं कर सकी। ऋषिने ही श्रोताओंकी परीक्षा लेनेके लिये उस काल्पनिक अग्निका आविष्कार किया था। सच्चे आत्मज्ञानी तो जनक ही थे।

जनक-जैसी विरक्तिका अभाव ही हमारे आध्यात्मिक पतनका कारण है।

एक मादा बिच्छू रात-दिन अपना ध्यान अपने अण्डोंमें लगाये रहती है, उन्हें पीठपर ढोती है। कालान्तरमें अण्डोंसे निकले हुए नन्हे बिच्छू ही उसकी मौतका कारण बनते हैं।

हम वस्तुओंके संग्रहद्वारा किसी भी नयी चीजका 'निर्माण' नहीं कर सकते। पृथ्वी-तत्त्वसे बनी हुई चीजोंको हम अपनी इन्द्रियोंकी इच्छाके अनुरूप विभिन्न साँचोंमें ढाल सकते हैं। इस प्रकार रात-दिन हम अपने इन्द्रिय-सुखके लिये नये-नये पदार्थोंकी कल्पना करते रहते हैं। पर तृप्ति नहीं होती। पृथ्वी-तत्त्वसे उपलब्ध पदार्थोंको विभिन्न रूपोंमें तैयार करना शतांशमें भी निर्माण नहीं है—यह 'निर्माण' हमारे अन्तःकरणके विकार एवं सुप्त कामनाओंके मात्र प्रदर्शनके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसी इन्द्रजाली निर्माणसे हम सुख प्राप्त करना चाहते हैं, यही हमारी सबसे महान् भ्रान्ति है। युगकी वैज्ञानिक प्रगति इस भ्रान्तिका जीता-जागता उदाहरण है। यही प्रगति हमें अपने सही पथसे भटका रही है। आये दिन नये-नये आविष्कार हो रहे हैं और इस प्रकार चक्रवृद्धि-रूपसे हमारी तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। सच कहा जाय तो हम अपने रक्तमें मिले हुए काले साँपके विषको आकका दूध पीकर नष्ट करनेकी प्राणघातक चेष्टा कर रहे हैं।

सच्चा सुख तो इसीमें है—

किसी घरमें न घर कर बैठना इस दारे फानीमें।
ठिकाना बेठिकाना औ, मकाँ बर लामकाँ रखना॥

महर्षि लोमश हमें प्रेरणादायक हों।

भगवान्में सदेह लीन

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

अणिमादि अष्टसिद्धियोंके अतिरिक्त गुटिका, अञ्जन, पादलेप, पादुकासिद्धि, खड्गसिद्धि आदि अनेक प्रकारकी सिद्धियाँ शास्त्रोंमें बतलायी गयी हैं।[1] इसी प्रकार द्वन्द्वसहन, दूरश्रवण-दर्शन, मनोजव, कामरूप, परकायप्रवेश, संकल्प-सिद्धि, अप्रतिहतगति, आज्ञासिद्धि, अग्निविषजलादिका स्तम्भन तथा अपराजितादि अन्य बहुत-सी सिद्धियाँ भी बतलायी गयी[2] हैं। तथापि शास्त्रकारोंने धर्म-मोक्ष-सिद्धिको विशिष्ट सिद्धि बतलाया है—

धर्मार्थकामसिद्धिश्च मोक्षसिद्धिरनुत्तमा।

(स्क० चतुरशी० ५९। ५५)

मोक्षसे भी जीवन्मुक्ति तथा सदेह भगवद्विग्रहप्रवेशको विशिष्ट सिद्धि कहा गया है। श्रीविष्णुपुराण तथा श्रीविष्णु-धर्मोत्तर आदिकी अनेकानेक कथाओंमें भगवान्द्वारा भक्तशरीरमें प्रवेशावस्थानादिकी बार-बार चर्चा आयी है। त्रेतायुगके देवासुरसंग्राममें देवताओंकी प्रार्थनापर भगवान्ने शशादपुत्र पुरंजयके देहमें प्रवेश किया था। (विष्णु० ४। २। २६)। इसी प्रकार धुन्धुनामक दैत्यके वधके लिये देवताओंकी प्रार्थनापर उत्तङ्कके कल्याणार्थ भगवान्ने कुवलाश्व राजाके शरीरमें प्रवेश किया था—ऐसी कथा हरिवंश, ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, वायु तथा विष्णुपुराण आदिमें आयी है—

योऽसावुत्तङ्कस्य महर्षेरपकारिणं धुन्धुनामानमसुरं वैष्णवेन तेजसाप्यायितः पुत्रसहस्रैः ··· जघान धुन्धुमार-संज्ञामवाप। (विष्णु० ४। २। ४०)

तमाविशत्तदा विष्णुर्भगवान् तेजसा प्रभुः।
उत्तङ्कस्य नियोगाद् वै लोकस्य हितकाम्यया॥

(ब्रह्माण्ड० ३। ६३। ४९, वायु० ३। ८८। ४९, ब्रह्मपुराण ७। ७५, हरिवंश० १। ११। ४५)

उपर्युक्त चारों स्थलोंमें यह श्लोक एक रूपमें ही उपलब्ध होता है। इससे भी इस बातकी निर्बाध स्वीकृति ज्ञात होती है। इसी प्रकार मान्धातृपुत्र पुरुकुत्सके भी शरीरमें भगवान् विष्णुके प्रवेशकी बात है—

आह च भगवाननादिनिधनपुरुषोत्तमो योऽसौ यौवनाश्वस्य मान्धातुः पुरुकुत्सनामा पुत्रस्तमहमनुप्रविश्य

१—(क) अञ्जनं पादलेपश्च पादुकासिद्धिरेव च।
गुटिका खड्गसिद्धिश्च महासिद्धिः सुदुर्लभा॥
दिव्यौषधैश्च या सिद्धिर्मन्त्रस्पर्शोद्भवा च या।
(स्क० अवन्ती २-चतुरशी० लिङ्गमा० खं० अ० ५९। ५३-५४;
" " ७४। ५६-५७;
" रेवाख० करुणाभ्युदयस्तो० १८१। ४९)

(ख) भागवत ११। १५ तथा स्कन्द० रेवाखण्डादिमें इन सिद्धियोंको शिव-विष्णुभक्तिसे अत्यन्त सुलभ कहा गया है। चतुरशी० लिङ्गके सिद्धेश्वरमाहात्म्यमें इनका केवल अवन्तीस्थ सिद्धेश्वर लिङ्गके दर्शनसे ही सुलभ हो जाना कहा गया है—

एता याः सिद्धयः प्रोक्ता अपरा लघिमादयः।··· ···
जायन्ते नात्र संदेहः श्रीसिद्धेश्वरदर्शनात्। (वही ५५)

(ग) स्क० ब्रह्मखण्ड, सेतुमाहात्म्य १८। १८–२५ के अनुसार ये सभी सिद्धियाँ सुतीक्ष्णजीको केवल रामकुण्डमें स्नान तथा रामस्तोत्रके पाठसे प्राप्त हो गयी थीं—

स्तुवतो रामचन्द्रं च स्तोत्रेणानेन सुव्रताः।
तीर्थे च रघुनाथस्य कुर्वतः स्नानमन्वहम्॥
अभवन्निश्चला भक्तिः रामचन्द्रेऽतिनिर्मला।
अभूदद्वैतविज्ञानं प्रत्यगात्मैकलक्षणम्॥
अनधीतत्रयीज्ञानं तथैवाश्रुतवेदनम्।
परकायप्रवेशो च ··· योगिलभ्यानि सत्तमाः॥

वस्तुतः यह सब गीता १८। ४९-५५, विशेषकर ५४-५५ का भाष्य है। इसी प्रकार त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद् भी विशेषकर गीता १८। ५४-५५ का भाष्य है।

२—भागवत स्क० ११ अध्याय १५ श्लो० १ से ३० तक।

३—बुदकस्य पाठ भ्रष्ट है—'बुत्तङ्कस्य' होना चाहिये। कुवलयाश्व भी अशुद्ध है। कुवलाश्व होना चाहिये। कुवलयाश्व दूसरा ही हुआ है। (द्रष्टव्य मै० उ० १। ४)

तानशेषान् दुष्टगन्धर्वानुपशमं नयिष्यामीति । ···रसातल-गतश्चासौ भगवत्तेजसाप्यायितात्मवीर्यः···।' इत्यादि

(विष्णुपु० ४ । ३ । ६, ९)

इसी प्रकार विष्णुधर्ममें सुमति आदिकी कथा है। वास्तवमें 'विष्णु' शब्दका कुछ अर्थ भी इसी प्रकारका है—

विशतेः नुक्प्रत्ययान्तस्य रूपं विष्णुः

(विष्णुस० शां० भा० १४, पृ० ७३ सं० गीताप्रेस)

यस्माद्विष्टमिदं विश्वं तस्य शक्त्या महात्मनः ।
तस्मात् स प्रोच्यते विष्णुर्विशेर्धातोः प्रवेशनात् ॥

(विष्णुपुराण ३ । १ । ४५)

गीता ८ । ११; ११ । ५४ तथा १८ । ४९ से ५५ में भी इस सिद्धिकी चर्चा है—उसके 'विशन्ति यद् यतयो वीत-रागाः' 'ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप।' (११ । ५४) तथा 'नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां', 'सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म···', 'ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्[४]' आदि शब्द प्रत्यक्ष ही इसे स्मरण दिलाते हैं । और त्रिपाद्विभू० महानारायणोप० पृ० ३०२ (काशी हि० प्रे० संस्करण) स्कन्द०, सेतुमाहात्म्य १८ । १८, ३५ आदिमें इसका श्रेष्ठतम भाष्य है ।

इसके समर्थनमें पुराणोंमें अनेकानेक उदाहरण तथा आख्यान भी प्राप्त होते हैं । वस्तुतः उनका यदि यहाँ संग्रह किया जाय तो वह भी एक बड़ा पोथा बन जाय । यहाँ केवल थोड़ी-सी घटनाओंका ही उल्लेख किया जा रहा है—

विष्णुपुराण ४ । ४ । ८० आदिमें खट्वाङ्गकी भगवान्‌में लय होनेकी बात स्पष्ट है—

अशेषदेवगुरौ भगवत्यनिर्देश्यवपुषि सत्तामात्रात्मन्यात्मानं परमात्मनि वासुदेवाख्ये···लयमवाप ।[५]

शाकलदेशके राजा चित्रसेनकी मनोरमा नामकी कन्या जातिस्मरा थी । उसने विवाह नहीं किया और अविमुक्तेश्वर लिङ्गमें प्रविष्ट होकर लीन हो गयी—

सापि दृष्ट्वैव तल्लिङ्गं तस्मिँल्लिङ्गे लयं गता ।

(स्कन्द, अवन्ती, चतुरशी० माहा० ७८ । ५०)

इसी प्रकार पिङ्गलनामक ब्राह्मणकी पुत्री भक्तिमती पिङ्गला भी पिङ्गलेश्वरमें लीन हो गयी। (वही, ८१ । ८९)

दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य तस्मिँल्लिङ्गे लयं गता ॥

इसी प्रकार स्कन्दपुराण, काशीखण्डमें कई कथाएँ हैं । वीरेश्वरलिङ्गमें तो वेदशिरामुनि, चन्द्रमौलि, भरद्वाज तथा कई गन्धर्व-अप्सरादि सदेह प्रविष्ट और लीन हो गये हैं—

नृत्यन्ती निजभावेन पुरा ह्यत्राप्सरोवरा ।
सदेहा कोकिलालापा लिङ्गमध्ये लयं गता ॥
ऋषिर्वेदशिरा नाम जपन् वै शतरुद्रियम् ।
अत्र ज्योतिर्मये लिङ्गे सशरीरोऽविशत् पुरा ॥
चन्द्रमौलिभरद्वाजौ उभौ पाशुपतोत्तमौ ।
वीरेश्वरं समभ्यर्च्य गायमानौ लयं गतौ ॥

(काशीख० १० । १०६–१०९)

इसी प्रकार ॐकारेश्वर लिङ्गमें कपिल, सावर्णि,

४—(क) नाम् अद्वैतं चैतन्यमात्रैकरसम् अजम् अजरम् अमरम् अभयम्···आकाशकल्पं···विशते ।

(शां० भा० गी० १८ । ५५)

(ख) प्रविशति प्राप्नोति । (गी० रामानुजभा० १८ । ५५)

(ग) विशते आनन्दरूपो भवति, विशते लीलासु इति वा इति शेषः । (वल्लभसं० अमृ० तरं० टीका)

(घ) सकलचेतनाचेतनभिन्नाभिन्नस्वभावं ··· मां साक्षादनुभवति । विशते निरतिशयानन्दं ··· 'यो मां पश्यति सर्वत्र ··· प्रणश्यति ।' (केशवकाश्मीरिभट्टाचार्यकृत तत्त्वप्रकाशि० १८ । ५५)

(ङ) विशते–मद्रूप एव भवति । (मधुसूदनसरस्वती १८ । ५५ गी०)

(च) विशते–'अहं ब्रह्मास्मि' इति ब्रह्मणि अहंबुद्धिं प्रवेशयति । (शंकरानन्द–")

(छ) विशते–मदाकारो भवति । (सूर्यदैवज्ञ–परमार्थप्रपा)

[इत्यादि–गुजरा० प्रिं० प्रेस० संस्क०]

५—शबरी आदिके सम्बन्धमें भी कहीं-कहीं ऐसा उल्लेख है—

'छलिन की छौंड़ी सो निगोड़ी छोटी जाति-पाँति
कीन्ही लीन आपु में सुनारी भोंड़े भील की ।

(कवितावली ७ । १८)—

'हरिपद लीन भइ जहँ नहिं फिरे' आदि ।

६—ऐसी बहुत-सी कथाएँ 'जन्मान्तर' रहस्य लेखमें नहीं आयीं । काकभुशुण्डि आदिकी भी नहीं आयी—'सुधि मोहि नाथ जनम बहु केरी । सिव प्रसाद मति मोहँ न घेरी' आदि । इधर ३-५-६५ की **Northern India Patrika** में भी एक ऐसी घटनाका उल्लेख है, जिसपर विशेष प्रकाश अभी नहीं डाला गया है ।

श्रीकण्ठ, पिङ्गल और अंशुमान् नामक पाँच पाशुपत शिवभक्त एक साथ ही लीन हो गये थे—

कपिलश्चैव सावर्णिः श्रीकण्ठः पिङ्गलोंऽशुमान् ।
एते पाशुपताः सिद्धाः···कृत्वा पञ्चापि पूजनम् ।
नृत्यन्तः सहुडुत्कारं तस्मिँल्लिङ्गे लयं ययुः ॥

(का० उ० ७३ । ६०)

इसीमें माधवी भी सदेह लीन हुई थी—

वैशाखस्य चतुर्दश्यामेकदा सा तु माधवी ।
···गायन्ती मधुरं गीतं नृत्यन्ती निजलीलया ।
ध्यायन्ती लिङ्गमोंकारं तत्र लिङ्गे लयं ययौ ॥

(वही ७४ । ९५)

परमाचार्य श्रीगर्गाचार्यजी महाराज भी भरद्वाजके पुत्र दमनके साथ इसी ॐकारेश्वरमें लीन हो गये थे ।

दमनोऽपि हि धर्मात्मा गर्गाचार्येण संयुतः ।
आराध्य श्रीमदोंकारं तस्मिँल्लिङ्गे लयं गतः ॥

(वही ७४ । ११७)

इसी प्रकार परम दिव्य प्रसिद्ध त्रिलोचनलिङ्गमें परिमल नामका नागराज अपनी तीन नागी पत्नियोंसहित सदेह लीन हो गया था—

गायन् गीतं सुमधुरं नागीभिः सहितः कृती ।
आत्मानं चाति विस्मृत्य मध्येलिङ्गं लयं गतः ॥

(काशीख० उत्तरा० ७६ । ११७)

यह कथा ठीक इन्हीं श्लोक, पद, अक्षरोंमें स्कान्द०, अवन्ती०, चतुरशीतिलि० माहात्म्यके ४५ वें अध्यायमें भी है तथा यह श्लोक भी इसी प्रकार ४५ । १४४ में सुरक्षित है ।

स्कन्दपुराणके सभी खण्डोंमें तथा अन्यान्य पुराणोंमें भी इस प्रकारकी अगणित कथाएँ हैं । ये पूरी कथाएँ सचमुच बहुत ही रोचक हैं और ये भक्तलोग अपने समयके बड़े ही प्रभावशाली, दिव्य, भगवत्कृपा प्राप्त तथा सदाचारादि-गुणोपेत थे । भारतका इतिहास कितना प्राचीन तथा कैसा महत्त्वपूर्ण है, इसमें कितने सतयुग-त्रेतादि कालोंका व्यवधान हुआ है, कहना कठिन है । पर आजके धूर्त पाश्चात्त्य ऐतिहासिक इन्हें तिरोहितकर केवल दो हजार वर्षोंके हमारी पराजयका ही इतिहास लिखते हैं ।

सुतरां, इस प्रकारकी घटनाएँ पिछले दिनों भी होती रहीं । इनकी परम्परा सर्वथा लुप्त नहीं हुई है । भक्तिमती मीराबाईके अन्तमें द्वारकास्थ श्रीरणछोड़जीके विग्रहमें सदेह लीन होनेकी घटनाका वर्णन श्रीप्रियादासजीने किया है—

बेगि लैकै आऔं, मोकों प्रान दै जिवावौ,
अहो गए द्वार धरनौ दै बिनती सुनाइयै ।
सुनि बिदा होन गई राय रनछोड़ जू पै
छाड़ौ राखौ हीन, लीन भई नहिं पाइयै ॥

(भक्तमाल, भक्तिरसबोधिनीव्याख्या ४८०)

इसी प्रकार श्रीचैतन्य महाप्रभुके भी अन्तमें भगवान् जगन्नाथके श्रीविग्रहमें सदेह लीन होनेकी घटनाकी बहुत प्रसिद्धि है ।

(द्रष्टव्य चै० चरितावली ख० ५, पृ० २०६ गीताप्रेस, चै० चरितामृ० अन्त्य ली०)

वस्तुतः भगवान्‌की कृपासे इस संसारमें कुछ भी दुर्लभ और आश्चर्यकर नहीं है ।

परम दिव्य ग्रन्थ श्रीमद्भागवतके विविध आख्यानों तथा भजन-फलश्रुतियोंमें भी भक्तोंके सदेह भगवान्‌में अथवा उनके लोकोंमें प्रवेशकी बात अत्यन्त स्पष्टरूपसे आयी है ।

मृत्युरस्मादपैति । (१० । ३ । २७)
त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया
विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ।
(१० । ३ । ३३)
यदनुध्यायिनो धीरा मृत्युं जिग्युः सुदुर्जयम् ।
(४ । ९ । ५२)
अपि देहमव्ययम् । (८ । ३)
मृत्युर्धावति पञ्चमः ।
मृत्युश्चरति मद्भयात् । (३ । २५ । ४२)
बलिनोऽन्तकोरगात् ···भीतं प्रपन्नं परिपाति यो भयान्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि । (८ । २ । ३३)

—आदि वचनोंमें सुपुष्टरीत्या भजनके प्रतापसे मृत्युके टलनेकी बात आयी है । गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजके भी 'आई मीचु मिटति जपत रामनाम को' (कवितावली) तथा कबीरदास आदिके 'नामसनेही ना मरै, कह कबीर समुझाय' आदि पदोंका भी यही भाव दीखता है । ध्रुव, प्रह्लाद, गजेन्द्र, हनुमान् आदिके आख्यान भी इसके प्रबल पोषक हैं । प्रह्लादको मारनेके लिये उसके पिताके द्वारा बार-बार

प्रयुक्त मृत्यु-कृत्या आदिके अभिचार निष्फल होते रहे।
'मोको घालु जार, चाहे मार डाऊ······प्रह्लाद उबारे बार-बार।

इसी प्रकार भागवतादि ग्रन्थोंमें ध्रुवके विषयमें कथा आती है कि जब श्रीसुनन्दादि पार्षदोंने ध्रुवके पास आकर भगवान्‌का संदेश सुनाया और वे स्नानादि करके मुनियोंको प्रणामकर प्रभुके पास चलनेके लिये विमानपर चढ़नेको उद्यत हुए, तब उन्होंने देखा कि मृत्यु भी आ रहा है। उसने ध्रुवके चरणोंमें आकर अपनी कृतार्थताके लिये प्रार्थना की। इसपर उन्होंने उसके मस्तकपर अपना पैर रख दिया और विमानपर चढ़कर गये—

मुनीन् प्रणम्याशिषमभ्यवादयत्—
तदोत्तानपदः पुत्रो ददर्शान्तकमागतम्।
मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा आरुरोहाद्भुतं गृहम्॥
(४।१२।३०)

यदा ध्रुवो विमानमारोढुमगच्छत् तदा मृत्युरागत्य तं प्रणम्योवाच हे महाराज मामङ्गीकुरु, 'उवाच ध्रुवः स्वागतं ते, क्षणं तावदुपविश। एवमुक्त्वा स विष्णोः स्मरणं कृत्वा मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा विमानमारुरोह।' [श्रीधरी भावार्थ-दीपिका व्याख्या।]

रामायण-भागवतादिमें प्रभु श्रीरामको देखनेवालों, रामद्वारा देखे जानेवालों, रामको छूनेवालों, उनके द्वारा छूए जानेवालों, उनके साथ बैठ जानेवालों, उनके साथ चलनेवालों, उनके पीछे चलनेवालों तथा उनकी परिचर्या करनेवालोंको भी सदेह उन्हींके लोकोंको प्राप्त होनेकी बात आती है। पुराण रामायणादिके रामोपाख्यानोंमें सर्वत्र अयोध्याके स्थावर-जङ्गमादि समस्त प्राणिवर्गके भगवान् रामके साथ सदेह जीवित ही वैकुण्ठ जानेकी बात आती है—

ततः सस्त्रीपुमांसस्ते सपक्षिपशुबान्धवाः।
राघवस्यानुगाः सर्वे हृष्टा विगतकल्मषाः॥
यानि भूतानि नगरेऽप्यन्तर्धानगतानि च।
राघवं तान्यनुययुः स्वर्गाय समुपस्थितम्॥
यानि पश्यन्ति काकुत्स्थं स्थावराणि चराणि च।
सर्वाणि रामगमने अनुजग्मुर्हि तान्यपि॥
नोच्छ्वसत् तदयोध्यायां सुसूक्ष्ममपि दृश्यते।
तिर्यग्योनिगताश्चैव सर्वे राममनुव्रताः॥
(श्रीवाल्मीकिरामायण ७।१०९।१५, २०–२२)

य उत्तराननयत् कोसलान् दिवम्।
(श्रीमद्भा० ५।१९।८)

स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा।
कोसलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः॥
(श्रीमद्भागवत ९।११।२२)

'जड़ चेतन जग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु जिन प्रभु हेरे॥
ते सब भए परम पद जोगू।

भूतान्यदृश्यानि च यानि तत्र
ये प्राणिनः स्थावरजङ्गमाश्च।
साक्षात्परात्मानमनन्तशक्तिं
जग्मुर्विरक्ताः परमेकमीशम्॥
(अध्यात्मरा० ७।९।४६)

यान्तं दिवं मामनुयान्ति सर्वे
तिर्यक्शरीरा अपि पुण्ययुक्ताः।
(७।९।६१ का पूर्वार्द्ध)

बात यहींतक न रही, सृष्टिकर्ता विधाताने तो भावमग्न होकर यह नियम ही बना दिया कि जो भूलकर भी कभी आपका भजन कर लेगा, वह भी योगि-मुनि-दुर्लभ आपके लोकको ही प्राप्त हो जायगा—

ये चापि ते राम पवित्रनाम
गृणन्ति मर्त्या लयकाल एव।
अज्ञानतो वापि भजन्तु लोकां-
स्तानेव योगैरपि वाधिगम्यान्॥
(अध्यात्मरामा० ७।९।६३)

अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ। बसहुँ राम सिय लखन बटाऊ॥
राम धाम पथ पाइहि सोई। जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई॥

पता नहीं इस प्रकार अबतक कितने पावन प्राणी भगवान्‌में लीन हुए अथवा उनके लोकको सदेह प्राप्त हुए।

इसी प्रकार भक्तप्रवर सत्यवादी महाराज हरिश्चन्द्र* भी अपनी समस्त प्रजाके साथ सदेह भगवद्धामको प्रविष्ट हुए—

* महाराज हरिश्चन्द्रकी गणना सर्वत्र श्रेष्ठ भगवद्भक्तोंमें की गयी है—द्रष्टव्य भक्तनाममालिका, तथा भक्तमालादि—

रुक्मांगद हरिचंद्र भरत दाधीच उदारा।
सुरथ, सुधन्वा, सिवी, सुमति अति बलिकी दारा॥

राज्ञा सह तदा सर्वे हृष्टपुष्टसुहृज्जनाः ।
सपुत्रभृत्यदारास्ते दिवमारुरुहुर्जनाः ॥
(मार्कण्डेयपुराण ८ । २७)

महाभारतादिमें विदुरके युधिष्ठिरकी देहमें लीन होने तथा महाराज युधिष्ठिरके सशरीर स्वर्गारोहणकी बात सर्वथा स्पष्ट तथा विस्तारसे वर्णित है ।

गजेन्द्र यद्यपि हीनयोनिमें प्रविष्ट था, तथापि भगवत्-स्तुति, भक्तिके प्रभावसे भगवान्द्वारा संस्पृष्ट होकर तत्काल चतुर्भुज वैष्णव विग्रहमें परिणत हो गया—

गजेन्द्रो भगवत्स्पर्शाद् विमुक्तोऽज्ञानबन्धनात् ।
प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥
(भाग० ८ । ४ । ६)

इसी प्रकार भगवान् व्यास, शुकदेव, हनुमान्‌जी, नारद-सनकादि नित्य सिद्धदेहको प्राप्त होकर भजन-भक्ति-परायण हुए ।*

इधर कलियुगमें भी श्रीकबीरदास, नानक, श्रीमद्वल्लभाचार्यजी, चैतन्य महाप्रभु, तिरुपण्ण, साधु माणिक्य तुकाराम†, मुक्ताबाई, मीराबाई आदि अगणित भक्तोंके सदेह भगवद्-विग्रहादिमें लीन होनेकी बात ज्ञात है । उनके पार्थिव शरीरकी प्राप्ति लोगोंको न हुई । भविष्यपुराण तथा विविध भक्तमालोंमें ऐसी घटनाएँ असंख्य हैं ।

कबीरदासके विषयमें रीवाँराज तथा प्रियादासजीने इस प्रकार लिखा है—

अतिसय पुष्प तुरंत मगाई ।
तामें निज तनु दियो दुराई ॥
सबके देखत तज्यो सरीरा ।
—इत्यादि (पृष्ठ ७३८)

मगहरमें जाय, भक्तिभावको दिखाय,
बहु फूलनि मँगाय, पौढो मिल्यौ हरिरागी है ।

अर्थात् उनका शरीर पुष्पोंमें ही विलीन हुआ—उसका पता किसीको न चला ।‡ (द्र० आड्यार बुलेटिन मार्च १९१६)

इसी प्रकार श्रीमद्वल्लभाचार्यजीके सशरीर गङ्गामें ऊपर उठनेकी बात प्रसिद्ध है । कहा जाता है कि वैष्णवाचार्य श्रीविष्णुस्वामीको साक्षात् भगवान्‌ने ही एक प्रतिमा तैयार कराकर दी थी और अन्तमें उन्होंने भी भजन करते हुए उसीमें प्रवेश किया था । दिग्विजयोंमें शंकराचार्यजीके भी सशरीर कैलासारोहणकी बातें हैं । उन्हें ले जानेके लिये इन्द्रादि देवता विमान लेकर आये थे—**'इन्द्रोपेन्द्रप्रधानैः··· सरसिरुहभुवा दत्तहस्तावलम्बः··· धाम नैजं प्रतस्थे'**
(शंक० दि० १६ । १०७)

योगवासिष्ठादिमें भी ऐसे कई उदाहरण हैं । उपनिषदों, वेदान्तग्रन्थोंमें तो **'विशन्ति यद् यतयो'** (कठ०) **'प्रवेष्टुं च परंतप', 'प्रविशेत् तदनन्तरम्'** के उपाय-प्रकारादिपर पूर्णरीत्या सम्यग् विवेचन प्राप्त होता है ।

---

* इसमें अतिशयोक्तिका अनुमान ठीक नहीं; क्योंकि सत्यवादी ऋषियोंने साक्षात् हरपत्नी भगवती सतीके शवका शिवद्वारा ढोये जाने तथा विष्णुचक्रद्वारा उसे काट-काटकर गिरानेका वर्णन कालिकादि पुराणोंमें किया है ।

† तुकारामका अन्त उनके गीताप्रेससे प्रकाशित चरित्रमें अन्तिम पृष्ठपर देखना चाहिये ।

‡ रीवाँराजकी रामरसिकावली भक्तमालामें अधिकांश भक्त इसी प्रकार लीन होते हैं । चोलराजको एक कन्या मिली थी । उसकी शादी उन्होंने धूमधामसे श्रीरङ्गजीसे की । उत्सवके अन्तमें वह रङ्गजीमें ही लीन हो गयी—'कन्या लीन भई हरि माहीं ।' पृ० ४५१ । योगिवाहादि भी इसी प्रकार लीन हुए—'लीन भयो हरिचरनन्ह माहीं ।' (पृ० ४५२)

प्रयुक्त मृत्यु-कृत्या आदिके अभिचार निष्फल होते रहे।
'मोको घाल जार, चाहे मार डाऊ......प्रह्लाद उबारे बार-बार।

इसी प्रकार भागवतादि ग्रन्थोंमें ध्रुवके विषयमें कथा आती है कि जब श्रीसुनन्दादि पार्षदोंने ध्रुवके पास आकर भगवान्‌का संदेश सुनाया और वे स्नानादि करके मुनियोंको प्रणामकर प्रभुके पास चलनेके लिये विमानपर चढ़नेको उद्यत हुए, तब उन्होंने देखा कि मृत्यु भी आ रहा है। उसने ध्रुवके चरणोंमें आकर अपनी कृतार्थताके लिये प्रार्थना की। इसपर उन्होंने उसके मस्तकपर अपना पैर रख दिया और विमानपर चढ़कर गये—

मुनीन् प्रणम्याशिषमभ्यवादयत्—
तदोत्तानपदः पुत्रो ददर्शान्तकमागतम्।
मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा आरुरोहाद्भुतं गृहम्॥
(४। १२। ३०)

यदा ध्रुवो विमानमारोढुमगच्छत् तदा मृत्युरागत्य तं प्रणम्योवाच हे महाराज मामङ्गीकुरु, 'उवाच ध्रुवः स्वागतं ते, क्षणं तावदुपविश। एवमुक्त्वा स विष्णोः स्मरणं कृत्वा मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा विमानमारुरोह।' [श्रीधरी भावार्थ-दीपिका व्याख्या।]

रामायण-भागवतादिमें प्रभु श्रीरामको देखनेवालों, रामद्वारा देखे जानेवालों, रामको छूनेवालों, उनके द्वारा छूए जानेवालों, उनके साथ बैठ जानेवालों, उनके साथ चलनेवालों, उनके पीछे चलनेवालों तथा उनकी परिचर्या करनेवालोंको भी सदेह उन्हींके लोकोंको प्राप्त होनेकी बात आती है। पुराण रामायणादिके रामोपाख्यानोंमें सर्वत्र अयोध्याके स्थावर-जङ्गमादि समस्त प्राणिवर्गके भगवान् रामके साथ सदेह जीवित ही वैकुण्ठ जानेकी बात आती है—

ततः स्त्रीपुमांसस्ते सपक्षिपशुबान्धवाः।
राघवस्यानुगाः सर्वे हृष्टा विगतकल्मषाः॥
यानि भूतानि नगरेऽप्यन्तर्धानगतानि च।
राघवं तान्यनुययुः स्वर्गाय समुपस्थितम्॥
यानि पश्यन्ति काकुत्स्थं स्थावराणि चराणि च।
सर्वाणि रामगमने अनुजग्मुर्हि तान्यपि॥
नोच्छ्वसत् तदयोध्यायां सुसूक्ष्ममपि दृश्यते।
तिर्यग्योनिगताश्चैव सर्वे राममनुव्रताः॥
(श्रीवाल्मीकिरामायण ७। १०९। १५, २०—२२)

य उत्तराननयत् कोसलान् दिवम्।
(श्रीमद्भा० ५। १९। ८)

स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा।
कोसलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः॥
(श्रीमद्भागवत ९। ११। २२)

'जड चेतन जग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु जिन प्रभु हेरे॥
ते सब भए परम पद जोगू।

भूतान्यदृश्यानि च यानि तत्र
ये प्राणिनः स्थावरजङ्गमाश्च।
साक्षात्परात्मानमनन्तशक्तिं
जग्मुर्विरक्ताः परमेकमीशम्॥
(अध्यात्मरा० ७। ९। ४६)

यान्तं दिवं मामनुयान्ति सर्वे
तिर्यक्शरीरा अपि पुण्ययुक्ताः।
(७। ९। ६१ का पूर्वार्द्ध)

बात यहींतक न रही, सृष्टिकर्ता विधाताने तो भावमग्न होकर यह नियम ही बना दिया कि जो भूलकर भी कभी आपका भजन कर लेगा, वह भी योगि-मुनि-दुर्लभ आपके लोकको ही प्राप्त हो जायगा—

ये चापि ते राम पवित्रनाम
गृणन्ति मर्त्या लयकाल एव।
अज्ञानतो वापि भजन्तु लोकां-
स्तानेव योगैरपि वाधिगम्यान्॥
(अध्यात्मरामा० ७। ९। ६३)

अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ। बसहुँ राम सिय लखन बटाऊ॥
राम धाम पथ पाइहि सोई। जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई॥

पता नहीं इस प्रकार अबतक कितने पावन प्राणी भगवान्‌में लीन हुए अथवा उनके लोकको सदेह प्राप्त हुए।

इसी प्रकार भक्तप्रवर सत्यवादी महाराज हरिश्चन्द्र* भी अपनी समस्त प्रजाके साथ सदेह भगवद्धामको प्रविष्ट हुए—

* महाराज हरिश्चन्द्रकी गणना सर्वत्र श्रेष्ठ भगवद्भक्तोंमें की गयी है—द्रष्टव्य भक्तनाममालिका, तथा भक्तमालादि—

रुक्मांगद हरिचंद्र भरत दाधीच उदारा।
सुरथ, सुधन्वा, सिवी, सुमति अति बलिकी दारा॥

राज्ञा सह तदा सर्वे हृष्टपुष्टसुहृज्जनाः ।
सपुत्रभृत्यदारास्ते दिवमारुरुहुर्जनाः ॥
(मार्कण्डेयपुराण ८ । २७)

महाभारतादिमें विदुरके युधिष्ठिरकी देहमें लीन होने तथा महाराज युधिष्ठिरके सशरीर स्वर्गारोहणकी बात सर्वथा स्पष्ट तथा विस्तारसे वर्णित है ।

गजेन्द्र यद्यपि हीनयोनिमें प्रविष्ट था, तथापि भगवत्-स्तुति, भक्तिके प्रभावसे भगवान्‌द्वारा संस्पृष्ट होकर तत्काल चतुर्भुज वैष्णव विग्रहमें परिणत हो गया—

गजेन्द्रो भगवत्स्पर्शाद् विमुक्तोऽज्ञानबन्धनात् ।
प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥
(भाग० ८ । ४ । ६)

इसी प्रकार भगवान् व्यास, शुकदेव, हनुमान्‌जी, नारद-सनकादि नित्य सिद्धदेहको प्राप्त होकर भजन-भक्ति-परायण हुए ।*

इधर कलियुगमें भी श्रीकबीरदास, नानक, श्रीमद्वल्लभाचार्यजी, चैतन्य महाप्रभु, तिरुपण्ण, साधु माणिक्य तुकाराम†, मुक्ताबाई, मीराबाई आदि अगणित भक्तोंके सदेह भगवद्-विग्रहादिमें लीन होनेकी बात ज्ञात है । उनके पार्थिव शरीरकी प्राप्ति लोगोंको न हुई । भविष्यपुराण तथा विविध भक्तमालोंमें ऐसी घटनाएँ असंख्य हैं ।

कबीरदासके विषयमें रीवाँराज तथा प्रियादासजीने इस प्रकार लिखा है—

अतिसय पुष्प तुरंत मगाई ।
तामें निज तनु दियो दुराई ॥
सबके देखत तज्यो सरीरा ।
—इत्यादि (पृष्ठ ७३८)

मगहरमें जाय, भक्तिभावको दिखाय,
बहु फूलनि मँगाय, पौढो मिल्यौ हरिरागी है ।

अर्थात् उनका शरीर पुष्पोंमें ही विलीन हुआ—उसका पता किसीको न चला ।‡ (द्र० आड्यार बुलेटिन मार्च १९१६)

इसी प्रकार श्रीमद्वल्लभाचार्यजीके सशरीर गङ्गामें ऊपर उठनेकी बात प्रसिद्ध है । कहा जाता है कि वैष्णवाचार्य श्रीविष्णुस्वामीको साक्षात् भगवान्‌ने ही एक प्रतिमा तैयार कराकर दी थी और अन्तमें उन्होंने भी भजन करते हुए उसीमें प्रवेश किया था । दिग्विजयोंमें शंकराचार्यजीके भी सशरीर कैलासारोहणकी बातें हैं । उन्हें ले जानेके लिये इन्द्रादि देवता विमान लेकर आये थे—**'इन्द्रोपेन्द्रप्रधानैः··· सरसिरुहभुवा दत्तहस्तावलम्बः··· धाम नैजं प्रतस्थे'**
(शंक० दि० १६ । १०७)

योगवासिष्ठादिमें भी ऐसे कई उदाहरण हैं । उपनिषदों, वेदान्तग्रन्थोंमें तो **'विशन्ति यद् यतयो'** (कठ०) **'प्रवेष्टुं च परंतप', 'प्रविशेत् तदनन्तरम्'** के उपाय-प्रकारादिपर पूर्णरीत्या सम्यग् विवेचन प्राप्त होता है ।

---

* इसमें अतिशयोक्तिका अनुमान ठीक नहीं; क्योंकि सत्यवादी ऋषियोंने साक्षात् हरपत्नी भगवती सतीके शवका शिवद्वारा ढोये जाने तथा विष्णुचक्रद्वारा उसे काट-काटकर गिरानेका वर्णन कालिकादि पुराणोंमें किया है ।

† तुकारामका अन्त उनके गीताप्रेससे प्रकाशित चरित्रमें अन्तिम पृष्ठपर देखना चाहिये ।

‡ रीवाँराजकी रामरसिकावली भक्तमालामें अधिकांश भक्त इसी प्रकार लीन होते हैं । चोलराजको एक कन्या मिली थी । उसकी शादी उन्होंने धूमधामसे श्रीरङ्गजीसे की । उत्सवके अन्तमें वह रङ्गजीमें ही लीन हो गयी—'कन्या लीन भई हरि माहीं ।' पृ० ४५१ । योगिवाहादि भी इसी प्रकार लीन हुए—'लीन भयो हरिचरनन्ह माहीं ।' (पृ० ४५२)

मौतके मुँहसे बचा और इस प्रकार नयी जिंदगी मिली !

(लेखक—डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, दर्शनकेसरी, विद्याभूषण)

पानीमें भी मीन पियासी

राकफेलरको कौन नहीं जानता ?

'वह अपने युगका सबसे अमीर व्यक्ति था। उसका धन ही उसकी ख्यातिका कारण था।'

आपका उत्तर ठीक है।

वास्तवमें राकफेलर अमेरिकाका सबसे बड़ा पूँजीपति था। धनकी महिमा दूर-दूरतक स्वयं फैलती है। अपने व्यापारसे राकफेलरने सबसे अधिक धन कमाया था। उसे लक्ष्मीपुत्र कहा जाता था।

कहते हैं उसके पास इतनी असीम धनराशि थी कि पूरे शहरको भोजन देता रहे, तो भी न बीते। कमाई भी न करे, तो कई पीढ़ियाँ उसी शानसे सुख भोगती रहें !

हमारे यहाँ कुबेरको धनका देवता कहते हैं। इस दृष्टिसे आधुनिक धन-कुबेर राकफेलर था। मंडीमें वह जिस मालको खरीदना प्रारम्भ करता, पूरी मंडीकी वस्तुओंको खरीद डालता। उसके मुकाबलेमें खड़े होनेकी हिम्मत किसीको न थी, कोई उसके साथ प्रतियोगिता करनेकी हिम्मत ही न कर पाता था।

यदि केवल धन-सम्पदा, जमीन-जायदाद इत्यादिको ही मनुष्यकी सुख-शान्तिका आधार या ऐश-आराम ही संसारका चरम लक्ष्य समझा जाय, या सफलताकी कसौटी माना जाय तो राकफेलरको संसारका सबसे प्रसन्न और सफल व्यक्ति समझा जाना चाहिये था।

वह रुपयेकी शक्तिसे सभी कुछ खरीद सकता था—उत्तमोत्तम भोजन, बढ़िया वस्त्र, आलीशान गगनचुम्बी महल, कोठियाँ, मोटरकार, हवाई जहाज, आमोद-प्रमोद तथा भोगविलासकी असंख्य आधुनिकतम वस्तुएँ, हर प्रकारका सुख और सुविधा !

सच मानिये, कुछ भी उसके लिये असम्भव न था ! इस समाज और धरतीका कौन आनन्द था, जो उसके रुपये उसे खरीदकर न दे सकते थे।

राकफेलरकी व्यापारिक बुद्धिका चमत्कार इस बातसे जाना जा सकता है कि उसने अपने दस लाख डालर २३ वर्षकी कच्ची उम्रमें ही कमा लिये थे।

वह व्यापारमें कुशल था, साहसी था, बाजारके भावोंके उतार-चढ़ावमें दूरदर्शी था। उसके हाथोंमें व्यापारिक बल था और थी हृदयमें धनकी अतृप्त आकाङ्क्षा। संसारकी प्रसिद्ध स्टैन्डर्ड वैक्यूम आइल कम्पनीका स्वामित्व उसने ४३ वर्षकी आयुमें ही प्राप्त कर लिया था। अपार धनराशि बैंकोंमें उसके नामपर जमा थी। अनेक सूत्रोंसे अनाप-शनाप धन आ रहा था।

असमयमें ही मौतके मुँहमें

पर शोककी बात थी ! जीवनका हरा-भरा सुरभित और मधुर रूप वह नहीं देख पाया था ! उसका यौवन धन-रूपी फूलोंपर फुदक तो रहा था, पर अंदरसे अतृप्त और शुष्क ही था। धन और सांसारिक उन्नतिमें लहरा-लहराकर वह अपना भ्रमर मन न टटोल पाया था !

५३ वर्षका धनकुबेर मनसे अशान्त और उद्विग्न था। उसे नाना प्रकारकी छोटी-बड़ी चिन्ताओंने अपना शिकार बना लिया था।

बात यह थी कि उसे हर समय कोई-न-कोई चिन्ता बनी ही रहती थी। धन अपने साथ अतृप्ति भी लाता है। हर घड़ी विषाद, व्यापारमें हानिकी आशङ्का, हिसाब-किताबमें गड़बड़ी, आयकर-सम्बन्धी मुकदमोंकी परेशानी, कम्पनियोंमें नुकसानका डर, बैंकोंके फेल हो जानेकी कुकल्पना, चलते-फिरते किसी मुकदमेमें फँस जानेकी परेशानी, रुपया न डूब जाय—चोरी न हो जाय इत्यादि चिन्ताएँ उसे हरदम सताती रहती थीं।

कभी वह सोचता—कौन कार्यकर्त्ता कैसा काम कर रहा है ? व्यर्थ समय बरबाद तो नहीं कर रहा है ? भ्रष्टाचार करेगा, या नुकसान तो नहीं पहुँचायेगा, धोखा तो नहीं देगा ? एक नहीं, सैकड़ों प्रकारकी छोटी-बड़ी, तात्कालिक या देरमें आनेवाली चिन्ताओंने उसे बुरी तरह अपने कुटिल पंजोंमें जकड़ लिया था।

बाहरसे रेशमी सिल्कके बहुमूल्य वस्त्र पहननेवाला, गगनचुम्बी अट्टालिकाओंमें निवास करने और प्रतिदिन नवीन सुस्वादु कीमती भोजन करनेवाला, सैकड़ों नौकरोंसे अपनी सेवा कराकर भी बेचारा राकफेलर ५३ वर्षकी आयुमें केवल अतृप्ति और चिन्ताओंके कारण सूखकर

हड्डियोंका नर-कंकालमात्र रह गया था ! कैसी दुर्वह विडम्बना थी !

चिन्ताके कारण उसके शरीरका बुरा हाल था। सिरके बाल उड़ गये। फिर भौंहके बाल कम होने लगे। गंज होती जा रही थी। वह सोचता था यह क्या माजरा है।

उसकी भूख कम होते-होते जाती रही। अब हालत यह थी कि बढ़िया भोजन मेजपर शानसे लगा उसकी प्रतीक्षा कर रहा है और उसके सामने जानेमें ढिलमिल कर रहा है ! घरवाले चाहते हैं कि किसी प्रकार दो कौर भोजन कर ले, पर भोजनकी ओरसे उसे अरुचि है। कभी अग्निमान्द्य तो कभी कब्ज, कभी दस्त तो कभी पेचिश ! डाक्टर हैरान कि क्या करें, कैसे प्राण बचायें !

उसके चेहरेके तेज और लावण्यपर वृद्धावस्थाकी कालिमा मँडराने लगी। मौतकी कुटिल छाया उसपर पड़ रही थी ! गाल पिचके और दाँत जवाब देने लगे। रातको नींद न आती, गुदगुदे बिस्तरपर करवटें बदलते-बदलते आँखें खोले-खोले ही सारी रात कट जाती। बुरे स्वप्न दीखते थे !

कमरमें दर्द और झुकाव था, चलते हुए पैर लड़खड़ाते थे। ऐसा लगता था जैसे कोई भारी-भरकम अट्टालिका अब गिरी, अब गिरी !

चारों ओर उसे अपने कामके बिगड़ जानेका गुप्त भय सताया करता था। जीवनसे वह निराश—निरुपाय था ! मनमें तनाव था और हृदय बेचैन।

बाहरसे कोई अनुमानतक नहीं कर सकता था कि इस अमीरको भी जीवनमें कोई परेशानी हो सकती थी, पर उसके भीतर तो चिन्ताओंकी आग जल रही थी और अत्यन्त कुटिल संकल्पोंका संघर्ष चल रहा था। प्रतिदिन उनकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी। एक चिन्ता बढ़कर दस नयी-नयी चिन्ताओंको जन्म दे रही थी। वह चिन्ताके वास्तविक विषयसे परीशान न रहकर उसके प्रतीक-से परीशान रहने लगा। उस धनकुबेरके अस्थि-पञ्जरवत् शरीरको देखकर दुःख होता था।

जीवनके प्रभातमें वह ऐसा न था

जीवनके प्रभातमें राकफेलर एक हट्टे-कट्टे स्वस्थ शरीर-वाला युवक था। उसमें मानसिक तनाव न था। वह गाँव-में रहता था। वहाँके निर्द्वन्द्व वातावरण तथा उन्मुक्त वायु और खुले प्रकाशमें बड़ा हुआ था। जिंदगीके प्रति उत्साह था, शरीर मजबूत था। कंधा उठा, सीना तान, मस्त बैल-की तरह चला करता था।

लेकिन मायाके कुचक्रने उन्हें चौपट कर दिया। जैसे-जैसे उसके पास धन आता और इकट्ठा होता गया, वैसे-वैसे ही अधिकाधिक अमीर बननेकी अदम्य अभिलाषा, अमीरियतमें दूसरोंको परास्त करनेकी प्रतियोगिताके भाव मनको दबाने लगे। आर्थिक चिन्ताओंने उसके फूल-जैसे मस्त जीवनपर घातक विषैला तनाव डालना शुरू कर दिया। मानसिक तनावके कारण उसकी तन्दुरुस्ती क्रमशः गिरती गयी। ५३ वर्षकी आयुमें वह सूखकर अस्थियोंका ढाँचा मात्र रह गया ! पानीमें भी जैसे मछली प्यासी थी ! जलमें कमल सूख रहा था। उसका जीवन चलता-फिरता मुर्दा था।

तनिक कल्पना कीजिये, उसकी आय प्रति सप्ताह बीस लाख डालर थी, किंतु वह प्रति सप्ताह दो डालरका भोजन भी नहीं पचा पाता था। थोड़ेसे दूध तथा रोटीके एक टुकड़ेको पचा लेना भी उसके लिये बड़ी बात थी।

थोड़ी-सी हानि या व्यापारमें नुकसानकी आशङ्कासे वह बुरी तरह अस्त-व्यस्त हो जाता था। चिन्ता उसे बुरी तरह दबा देती। एक चिन्ता आते ही रातभर उनींदा रह जाता था वह।

एक बार यह हुआ !

जिंदगीमें थपेड़े आते रहते हैं। समुद्रकी लहरोंकी भाँति उतार-चढ़ाव जीवनका क्रम है।

राकफेलरने चालीस हजार डालर मूल्यके अनाजका एक जहाज व्यापारके लिये विदेश भेजा था। यह ग्रजलेक्स-से होकर गया था। मालकी सुरक्षाके लिये प्रायः बीमा कराया जाता है। इस जहाजका बीमा करानेमें डेढ़ सौ डालर खर्चा आता था। इस पैसेको बचानेके लोभसे बीमा नहीं कराया गया। वैसे ही जहाज यात्रापर रवाना हो गया।

संयोगकी बात, उस रातको लेक्सपर बड़ा तूफान आया।

इस तूफानका पता चलते ही, राकफेलरको अपने जहाजकी सुरक्षाकी भयानक चिन्ता लग गयी। वह सोचने लगा—'कहीं यह तूफानमें डूब न जाय ? भयंकर

नुकसान हो जायगा। हाय, कितनी बड़ी गलती हो गयी। इस जहाजके मालके नष्ट हो जानेसे व्यापारमें बड़ी हानि हो जायगी! तब क्या होगा? उफ्, मेरी मूर्खता, मेरी अदूरदर्शिता ...! अब क्या करूँ?'

हजारों प्रकारकी चिन्ताओंने उसे झँझोड़कर रख दिया। सारी रात करवटें काटते बीती।

सबेरे जब उसका भागीदार जौर्ज गार्डनर आफिस आया, तब उसने राकफेलरको बड़ा चिन्तातुर देखा। सब आशङ्का सुनी। उसे भी लगा कि थोड़े-से पैसोंके लोभमें आकर भारी मूर्खता कर बैठे हैं। व्यापारमें बड़ी हानिकी आशङ्का थी।

किंतु अब क्या हो सकता था? तीर हाथसे छूट चुका था।

'अरे भाई! जो कुछ भी हो, जल्दी करो। किसी मूल्य-पर बीमा हो सके तो तुरंत करा दो। अब देर मत करो। जल्दी दौड़ जाओ। जितनी अधिक देर होती है, नुकसानकी आशङ्का बढ़ती जाती है।'

राकफेलरने अपने भागीदारको किसी शर्तपर अधिक-से-अधिक प्रीमियम देकर तुरंत अनाजसे भरे हुए जहाज-का बीमा करवानेको दौड़ाया।

बेचारा गार्डनर दौड़ा-दौड़ा गया। बड़ी मिन्नतें—खुशामदें कीं; जो कुछ अधिक-से-अधिक बीमाकी रकम माँगी गयी, उसे देकर आखिर किसी तरह जहाजका बीमा करवा दिया गया। तब राकफेलरकी चिन्ता कुछ दूर हुई। चाहे खर्च अधिक हो गया, पर बीमा तो हो गयी—यही संतोष था।

फिर एक नया मानसिक आघात!

किंतु चिन्ता भूतकी तरह मनुष्यपर सवार हो जाती है और नित्य नये-नये कारण ढूँढ़ती रहती है। राकफेलरके मनपर फिर हथौड़ेकी चोट लगी। एक नयी परीशानीने उसे फिर व्यग्र कर दिया।

यह सब क्यों हुआ?

बीमा करवाये ७-८ घंटे हुए थे कि इसी बीच समाचार आया कि उसका माल गन्तव्य स्थानपर सही-सलामत पहुँच गया था। सौभाग्यसे उसे कोई नुकसान नहीं हुआ था।

और कोई शुद्ध प्रवृत्तिका व्यक्ति होता तो ईश्वरकी इस बड़ी कृपाके लिये अनेक धन्यवाद देता, दान देता और खुशियाँ मनाता। प्रेमसे मित्रोंको भोजन कराता। उसकी प्रसन्नताका कोई ठिकाना न होता।

पर राकफेलर नकारात्मक विचारों (Negative thinking) में फँसा रहनेवाला धनकुबेर था। उसने अब इस तरह सोचना प्रारम्भ किया—

तनिक-सा काम था और मैं यों ही इतना डर गया। इस व्यर्थ भयसे आक्रान्त होकर बीमा करानेमें मैंने यों ही अपने डेढ़ सौ डालर बरबाद कर दिये। हाय, मेरा इतना धन जरा-सी फिक्रसे नष्ट हो गया। मैं भी कैसा अदूरदर्शी मूर्ख हूँ! कितना नुकसान हो गया! ऐसे धन बरबाद करता रहा, तो मुझे व्यापारमें लाभ कैसे होगा? कहीं मैं गरीब न हो जाऊँ?

इसी प्रकार कुत्सित चिन्तन करते-करते अपने धनकी चिन्तामें राकफेलर बीमार पड़ गया। उसने अधिक चिन्तित होकर खटिया ही पकड़ ली। दिनभर वह अपनी फजूल-खर्चीकी बातपर परीशान रहता। उस हानिके विचारोंने मनमें गुत्थी (Complex) बनकर जीर्ण चिन्ताका रूप धारण कर लिया। धनकी रक्षा और हाथसे यों ही निकले हुए धनके पश्चात्तापने जैसे उसे पागल-जैसा कर दिया। आत्मग्लानिके विचार उसे परीशान करने लगे।

ऐसे जीवनसे क्या लाभ?

यह झाँकी है दुनियाके एक सबसे अमीर आदमीके जीवनकी। ऐसे रुपये या व्यापारसे क्या लाभ, जो मनुष्यका अन्त ही कर दे? राकफेलरके पास अनाप-शनाप रुपया था, जिसे शायद वह गिन भी नहीं पाता था। कोई सांसारिक अभाव न था; पर फिर भी वह अपना सारा दिन अधिका-धिक धन कमाने या उसे बनाये रखने, जोड़ने और उसीके विषयमें सोचने-विचारनेमें व्यय करता था और किसी कार्यके लिये जैसे उसके पास कोई समय ही नहीं था।

अब समस्या यह थी कि राकफेलरको मौतके मुँहसे कैसे बचाया जाय? कौन-सी चिकित्सा की जाय, जिससे उसके प्राण बचें? बड़े-बड़े चिकित्सक आये, पर दवाईसे कोई लाभ न हुआ; क्योंकि उसकी बीमारी तो मानसिक थी।

उसके गुप्त मनमें असंतोष, लालच और चिन्ताएँ भावना-ग्रन्थियोंका रूप धारण किये बैठी थीं। मनोवैज्ञानिकों-से सलाह ली गयी। किसी भी तरकीबसे प्राण बचें।

मनोवैज्ञानिक सलाह, जिससे नया जीवन मिला

मनोवैज्ञानिकोंने कहा, 'जिस व्यक्तिमें लोभका भाव जितना अधिक होता है, वह उतना ही अधिक चिन्ताओंसे भर जाता है। लोभीका मन संसारके उपयोगी रचनात्मक कार्योंको छोड़कर केवल एक छोटेसे केन्द्रमें जम जाता है। धनकी कामनाएँ कभी तृप्त नहीं होतीं, हजारसे लाख और लाखसे करोड़ होनेपर भी अधिकाधिक पिपासा बढ़ती ही जाती है। अतः संग्रहका भाव त्यागकर संतोषका भाव अपनाना चाहिये।

'जिसके चित्तमें संतोष है, उसके लिये सर्वत्र धन-सम्पत्ति भरी हुई है; जिसके पैरमें जूते हैं, उसके लिये सारी पृथ्वी मानो चमड़ेसे ढकी है।

'संतोषरूपी अमृतसे तृप्त एवं शान्तचित्तवाले पुरुषको जो सुख प्राप्त है, वह धनके लोभसे इधर-उधर दौड़नेवाले बड़े-से-बड़े धनवान् लोगोंको कहाँ प्राप्त हो सकता है?'

राकफेलरके मित्रोंको सलाह दी गयी कि यदि उसे बचाना है तो उसका मन धनकी अतृप्त कामनासे हटाकर अन्य मनोरञ्जक विषयोंकी ओर लगाना चाहिये।

राकफेलरके भागीदार गार्डनर महोदयने उपर्युक्त सलाहको कार्यान्वित करनेकी एक युक्ति सोची। वह इस प्रकार थी—

गार्डनरने दो हजार डालरमें एक पालवाली नाव खरीदी। उसने स्वयं उसे चलाना सीखा। वह मजेमें उसे चलाता, प्रकृतिके उन्मुक्त चिन्तारहित वातावरणमें रहता और धार्मिक भजन गुनगुनाया करता था। इस नुस्खेसे उसे लाभ हुआ।

एक शनिवारको उसने राकफेलरको नौका-विहारका निमन्त्रण देते हुए कहा—'काम छोड़ो; चलो, इस धनके दमघोटू वातावरणसे बाहर निकलकर दिल बहलायें। नावमें घूम लेने और भजन गानेसे तन और मन ताजा हो जायगा। जिंदगीमें रस और परिवर्तन आ जायगा। इस परिस्थिति और स्थानका परिवर्तन करो।'

राकफेलर उत्तेजित होकर बोला—'ऐसे फालतू कामके लिये मेरे पास वक्त नहीं।'

गार्डनरने प्रेम-हठ किया—'मेरे मित्र! तनिक खुले जीवन, उन्मुक्त प्रकृति, निश्चिन्त जीवनका आनन्द लो, परमेश्वरके नाममें स्वास्थ्यकी शक्ति छिपी है। भक्तिके गीत गुनगुनाओ, सांसारिकता छोड़ो।'

राकफेलरको जबरदस्ती उस वातावरणसे हटाया गया। जैसे-जैसे वह धनके कुचक्रसे निकला और ईश्वरत्वकी ओर बढ़ा, वैसे-वैसे ही उसके स्वास्थ्यमें लाभ दिखायी दिया। उसने अनुभव किया कि माया-मोहमें अतिलिप्त रहना आधि-व्याधिका कारण है। अब उसने और भी ध्यानपूर्वक मनोवैज्ञानिक सलाह ली। मनोवैज्ञानिक डाक्टरोंने उसे कुछ और विस्तारसे लाभदायक सूत्र बतलाये, जो इस प्रकार थे—

"चिन्तासे दूर रहे; क्योंकि यह मानसिक तनाव उत्पन्न करती है। रुपये कमाने, ऋण वसूल करने, शेयरोंके भाव ऊँचे-नीचे होने, बैंकोंके फेल होने या अपनी पूँजीके मारे जानेकी किंचित् भी चिन्ता न करे। मनसे इस प्रकारका सारा तनाव (Tension) त्याग दे।

"शरीरसे होनेवाले मनोरञ्जक रचनात्मक कार्योंमें दिलचस्पी ले। पर्याप्त मनोरञ्जन और आमोद-प्रमोद किया करे। बागवानी, पानीमें तैरना, खूब टहलना, पर्वतीय प्रदेशोंकी पैदल यात्राएँ करना-जैसे काम किया करे। प्रतिदिन हलका व्यायाम किया करे।

"चिन्ता दूर करनेके ऊपरी तरीके जैसे सिगरेट, शराब, जुआ वा नशेबाजीके उपाय सब बिल्कुल ही छोड़ दे।

"कई बार दिनमें हलका भोजन करे। चाय, कहवा, मिठाई, नाश्ते इत्यादि छोड़कर हलका और फल तथा दूधयुक्त भोजन किया करे।

"मनको भय और लोभके प्रबल आवेगोंसे बचाता रहे। संतोष और तृप्तिकी शिवभावना और उदारताकी भावनाओंका अभ्यास और प्रयोग करे। हानि-लाभ दोनों ही स्थितियोंमें मनको पूर्ण शान्त, संतुलित और अविचलित रक्खा करे। मनमें सदा 'ईश्वर मेरे साथ हैं, मेरे सहायक और रक्षक हैं'—यह भाव रक्खे। किसी भी घटनाके विषयमें अधिक चिन्तित न रहे। अन्तिम परिणाम ईश्वरपर छोड़कर हर दशामें अपने मनको संतुलित बनाये रहे। प्रतिदिन भगवत्-पूजनसे दिनका प्रारम्भ करे और सोनेसे पूर्व दिनकी समाप्तिपर ईश्वरको धन्यवाद दे और प्रतिदिन भजन गाया करे।"

इस प्रकार नयी जिंदगी मिली

अब राकफेलर इन नियमोंका दृढ़तासे पालन करने लगा।

नुकसान हो जायगा। हाय, कितनी बड़ी गलती हो गयी। इस जहाजके मालके नष्ट हो जानेसे व्यापारमें बड़ी हानि हो जायगी! तब क्या होगा? उफ्, मेरी मूर्खता, मेरी अदूरदर्शिता ...! अब क्या करूँ?'

हजारों प्रकारकी चिन्ताओंने उसे झँझोड़कर रख दिया। सारी रात करवटें काटते बीती।

सबेरे जब उसका भागीदार जौर्ज गार्डनर आफिस आया, तब उसने राकफेलरको बड़ा चिन्तातुर देखा। सब आशङ्का सुनी। उसे भी लगा कि थोड़े-से पैसोंके लोभमें आकर भारी मूर्खता कर बैठे हैं। व्यापारमें बड़ी हानिकी आशङ्का थी।

किंतु अब क्या हो सकता था! तीर हाथसे छूट चुका था।

'अरे भाई! जो कुछ भी हो, जल्दी करो। किसी मूल्य-पर बीमा हो सके तो तुरंत करा दो। अब देर मत करो। जल्दी दौड़ जाओ। जितनी अधिक देर होती है, नुकसानकी आशङ्का बढ़ती जाती है।'

राकफेलरने अपने भागीदारको किसी शर्तपर अधिक-से-अधिक प्रीमियम देकर तुरंत अनाजसे भरे हुए जहाज-का बीमा करवानेको दौड़ाया।

बेचारा गार्डनर दौड़ा-दौड़ा गया। बड़ी मिन्नतें—खुशामदें कीं; जो कुछ अधिक-से-अधिक बीमाकी रकम माँगी गयी, उसे देकर आखिर किसी तरह जहाजका बीमा करवा दिया गया। तब राकफेलरकी चिन्ता कुछ दूर हुई। चाहे खर्च अधिक हो गया, पर बीमा तो हो गयी—यही संतोष था।

फिर एक नया मानसिक आघात!

किंतु चिन्ता भूतकी तरह मनुष्यपर सवार हो जाती है और नित्य नये-नये कारण ढूँढ़ती रहती है। राकफेलरके मनपर फिर हथौड़ेकी चोट लगी। एक नयी परीशानीने उसे फिर व्यग्र कर दिया।

यह सब क्यों हुआ?

बीमा करवाये ७-८ घंटे हुए थे कि इसी बीच समाचार आया कि उसका माल गन्तव्य स्थानपर सही-सलामत पहुँच गया था। सौभाग्यसे उसे कोई नुकसान नहीं हुआ था।

और कोई शुद्ध प्रवृत्तिका व्यक्ति होता तो ईश्वरकी इस बड़ी कृपाके लिये अनेक धन्यवाद देता, दान देता और खुशियाँ मनाता। प्रेमसे मित्रोंको भोजन कराता। उसकी प्रसन्नताका कोई ठिकाना न होता।

पर राकफेलर नकारात्मक विचारों (Negative thinking) में फँसा रहनेवाला धनकुबेर था। उसने अब इस तरह सोचना प्रारम्भ किया—

तनिक-सा काम था और मैं यों ही इतना डर गया। इस व्यर्थ भयसे आक्रान्त होकर बीमा करानेमें मैंने यों ही अपने डेढ़ सौ डालर बरबाद कर दिये। हाय, मेरा इतना धन जरा-सी फिक्रसे नष्ट हो गया। मैं भी कैसा अदूरदर्शी मूर्ख हूँ! कितना नुकसान हो गया! ऐसे धन बरबाद करता रहा, तो मुझे व्यापारमें लाभ कैसे होगा? कहीं मैं गरीब न हो जाऊँ?

इसी प्रकार कुत्सित चिन्तन करते-करते अपने धनकी चिन्तामें राकफेलर बीमार पड़ गया। उसने अधिक चिन्तित होकर खटिया ही पकड़ ली। दिनभर वह अपनी फजूल-खर्चीकी बातपर परीशान रहता। उस हानिके विचारोंने मनमें गुत्थी (Complex) बनकर जीर्ण चिन्ताका रूप धारण कर लिया। धनकी रक्षा और हाथसे यों ही निकले हुए धनके पश्चात्तापने जैसे उसे पागल-जैसा कर दिया। आत्मग्लानिके विचार उसे परीशान करने लगे।

ऐसे जीवनसे क्या लाभ?

यह झाँकी है दुनियाके एक सबसे अमीर आदमीके जीवनकी। ऐसे रुपये या व्यापारसे क्या लाभ, जो मनुष्यका अन्त ही कर दे? राकफेलरके पास अनाप-शनाप रुपया था, जिसे शायद वह गिन भी नहीं पाता था। कोई सांसारिक अभाव न था; पर फिर भी वह अपना सारा दिन अधिका-धिक धन कमाने या उसे बनाये रखने, जोड़ने और उसीके विषयमें सोचने-विचारनेमें व्यय करता था और किसी कार्यके लिये जैसे उसके पास कोई समय ही नहीं था।

अब समस्या यह थी कि राकफेलरको मौतके मुँहसे कैसे बचाया जाय? कौन-सी चिकित्सा की जाय, जिससे उसके प्राण बचें? बड़े-बड़े चिकित्सक आये, पर दवाईसे कोई लाभ न हुआ; क्योंकि उसकी बीमारी तो मानसिक थी।

उसके गुप्त मनमें असंतोष, लालच और चिन्ताएँ भावना-ग्रन्थियोंका रूप धारण किये बैठी थीं। मनोवैज्ञानिकों-से सलाह ली गयी। किसी भी तरकीबसे प्राण बचें।

मनोवैज्ञानिक सलाह, जिससे नया जीवन मिला

मनोवैज्ञानिकोंने कहा, 'जिस व्यक्तिमें लोभका भाव जितना अधिक होता है, वह उतना ही अधिक चिन्ताओंसे भर जाता है। लोभीका मन संसारके उपयोगी रचनात्मक कार्योंको छोड़कर केवल एक छोटेसे केन्द्रमें जम जाता है। धनकी कामनाएँ कभी तृप्त नहीं होतीं, हजारसे लाख और लाखसे करोड़ होनेपर भी अधिकाधिक पिपासा बढ़ती ही जाती है। अतः संग्रहका भाव त्यागकर संतोषका भाव अपनाना चाहिये।

'जिसके चित्तमें संतोष है, उसके लिये सर्वत्र धन-सम्पत्ति भरी हुई है; जिसके पैरमें जूते हैं, उसके लिये सारी पृथ्वी मानो चमड़ेसे ढकी है।

'संतोषरूपी अमृतसे तृप्त एवं शान्तचित्तवाले पुरुषको जो सुख प्राप्त है, वह धनके लोभसे इधर-उधर दौड़नेवाले बड़े-से-बड़े धनवान् लोगोंको कहाँ प्राप्त हो सकता है ?'

राकफेलरके मित्रोंको सलाह दी गयी कि यदि उसे बचाना है तो उसका मन धनकी अतृप्त कामनासे हटाकर अन्य मनोरञ्जक विषयोंकी ओर लगाना चाहिये।

राकफेलरके भागीदार गार्डनर महोदयने उपर्युक्त सलाहको कार्यान्वित करनेकी एक युक्ति सोची। वह इस प्रकार थी—

गार्डनरने दो हजार डालरमें एक पालवाली नाव खरीदी। उसने स्वयं उसे चलाना सीखा। वह मजेमें उसे चलाता, प्रकृतिके उन्मुक्त चिन्तारहित वातावरणमें रहता और धार्मिक भजन गुनगुनाया करता था। इस नुस्खेसे उसे लाभ हुआ।

एक शनिवारको उसने राकफेलरको नौका-विहारका निमन्त्रण देते हुए कहा—'काम छोड़ो; चलो, इस धनके दमघोटू वातावरणसे बाहर निकलकर दिल बहलायें। नावमें घूम लेने और भजन गानेसे तन और मन ताजा हो जायगा। जिंदगीमें रस और परिवर्तन आ जायगा। इस परिस्थिति और स्थानका परिवर्तन करो।'

राकफेलर उत्तेजित होकर बोला—'ऐसे फालतू कामके लिये मेरे पास वक्त नहीं।'

गार्डनरने प्रेम-हठ किया—'मेरे मित्र ! तनिक खुले जीवन, उन्मुक्त प्रकृति, निश्चिन्त जीवनका आनन्द लो, परमेश्वरके नाममें स्वास्थ्यकी शक्ति छिपी है। भक्तिके गीत गुनगुनाओ, सांसारिकता छोड़ो।'

राकफेलरको जबरदस्ती उस वातावरणसे हटाया गया। जैसे-जैसे वह धनके कुचक्रसे निकला और ईश्वरत्वकी ओर बढ़ा, वैसे-वैसे ही उसके स्वास्थ्यमें लाभ दिखायी दिया। उसने अनुभव किया कि माया-मोहमें अतिलिप्त रहना आधि-व्याधिका कारण है। अब उसने और भी ध्यानपूर्वक मनोवैज्ञानिक सलाह ली। मनोवैज्ञानिक डाक्टरोंने उसे कुछ और विस्तारसे लाभदायक सूत्र बतलाये, जो इस प्रकार थे—

"चिन्तासे दूर रहे; क्योंकि यह मानसिक तनाव उत्पन्न करती है। रुपये कमाने, ऋण वसूल करने, शेयरोंके भाव ऊँचे-नीचे होने, बैंकोंके फेल होने या अपनी पूँजीके मारे जानेकी किंचित् भी चिन्ता न करे। मनसे इस प्रकारका सारा तनाव (Tension) त्याग दे।

"शरीरसे होनेवाले मनोरञ्जक रचनात्मक कार्योंमें दिलचस्पी ले। पर्याप्त मनोरञ्जन और आमोद-प्रमोद किया करे। बागवानी, पानीमें तैरना, खूब टहलना, पर्वतीय प्रदेशों-की पैदल यात्राएँ करना-जैसे काम किया करे। प्रतिदिन हलका व्यायाम किया करे।

"चिन्ता दूर करनेके ऊपरी तरीके जैसे सिगरेट, शराब, जुआ वा नशेबाजीके उपाय सब बिल्कुल ही छोड़ दे।

"कई बार दिनमें हलका भोजन करे। चाय, कहवा, मिठाई, नाश्ते इत्यादि छोड़कर हलका और फल तथा दूधयुक्त भोजन किया करे।

"मनको भय और लोभके प्रबल आवेगोंसे बचाता रहे। संतोष और तृप्तिकी शिवभावना और उदारताकी भावनाओंका अभ्यास और प्रयोग करे। हानि-लाभ दोनों ही स्थितियोंमें मनको पूर्ण शान्त, संतुलित और अविचलित रखा करे। मनमें सदा 'ईश्वर मेरे साथ हैं, मेरे सहायक और रक्षक हैं'—यह भाव रक्खे। किसी भी घटनाके विषयमें अधिक चिन्तित न रहे। अन्तिम परिणाम ईश्वरपर छोड़कर हर दशामें अपने मनको संतुलित बनाये रहे। प्रतिदिन भगवत्-पूजनसे दिनका प्रारम्भ करे और सोनेसे पूर्व दिनकी समाप्ति-पर ईश्वरको धन्यवाद दे और प्रतिदिन भजन गाया करे।"

इस प्रकार नयी जिंदगी मिली

अब राकफेलर इन नियमोंका दृढ़तासे पालन करने लगा।

जिंदगी बचानेके लिये उसने इन नियमोंको जीवनमें ढालना शुरू किया ।

कुछ महीनोंमें ही उसे इस नुस्खेसे लाभ होने लगा । उसके जीवनका एक नया अध्याय आरम्भ हुआ । वह संकुचित स्वार्थ और लोभके विचारोंसे मुक्त होकर संतोष-रूपी अमृतसे तृप्त होने लगा । खेलने-कूदने, आमोद-प्रमोद करने, नये-नये मनोरञ्जनोंमें समय देने लगा । वह बाग, देहात और खुले स्थानोंमें घूमता, नाचता और गाता था । सबसे बड़ी बात यह हुई कि वह भौतिकवादसे हटकर अध्यात्मवाद, भजन, पूजन, ईश्वर-चिन्तन और कल्याण-भावनामें रमण करने लगा । गिरजाघर जाकर धार्मिक भाषण सुनना, प्रार्थनामें सक्रिय भाग लेना, धार्मिक ग्रन्थ पढ़ना और धार्मिक उत्सवोंमें भाग लेना उसके जीवनका अङ्ग बन गया ।

इस प्रकार राकफेलरकी जिंदगीने नयी करवट ली । धनके मायाचक्रसे पिण्ड छूटा । सांसारिकताके संकीर्ण दायरेसे हटकर अब वह संतोषवृत्तिकी ओर लगा । सेवा, कर्तव्य, भगवत्पूजन, निर्द्वन्द्व प्रसन्नतामूलक आशावादी दृष्टिकोण आ गया । धीरे-धीरे उसके शरीर और मनका कायाकल्प हो गया । खोया हुआ स्वास्थ्य और जीवन फिर लौट आया । जो व्यक्ति मौतके मुँहमें प्रतिदिन मरनेकी बाट देख रहा था, उसे नयी जिंदगी मिली, नया यौवन मिला और वह तीस वर्ष और अधिक जीवित रहा । राकफेलरने अपनी इस नयी जिंदगीके मनोरञ्जक संस्मरण लिखे हैं । उनके अनुभवोंमेंसे कुछ कामकी बातें यहाँ दी जाती हैं ।

'मैं धनकी चिन्तासे छूटा तो मुझे नयी जिंदगी मिली। मैंने अनुभव किया है कि धनके असंतोषसे बढ़कर और कोई दुःख नहीं है ।

'मैंने गोल्फ खेलना सीखा, खुली हवामें सुबह-शाम दूर-दूर तक टहलनेकी आदत डाली । प्रकृतिके वातावरणमें रहनेसे मेरी चिन्ता भागी । मैंने अनुभव किया कि शराफतसे जीवित रहनेके लिये मनुष्यको बहुत थोड़े-से पैसोंकी जरूरत है ।

'धन-संचयकी चिन्ता त्यागकर मैंने अपने पास-पड़ोसके साधारण व्यक्तियोंके जीवन तथा व्यक्तिगत समस्याओं, उनके हर्ष-विषाद, दुःख-दर्दमें सहानुभूतिपूर्वक हिस्सा लिया तथा उनके दुःख-दर्द दूर करनेका उपाय किया । नयोंसे मेल-जोल बढ़ाया । इन नये सम्पर्कोंसे मेरी चिन्ताएँ कम हो गयीं ।

'मैंने अपनी सम्पत्तिकी चिन्ता छोड़ दी । मुझे अनुभव हो गया कि जीनेके लिये सुरक्षाकी दृष्टिसे मुझे भविष्यमें कपड़ा, भोजन और सम्मान सदा यों ही मिलता रहेगा । इसलिये मैं प्रतिवर्ष कितना कमाता हूँ और कितना खर्च करता हूँ, इस हानि-लाभके विचारको मैंने त्याग दिया । मैंने अनुभव किया कि धनकी अपेक्षा जीवनमें और भी अधिक मूल्यवान् बहुत-से कार्य करनेके लिये मौजूद हैं ।

'कितना धन मैं कमा सकता था, इसकी चिन्ता छोड़कर अब मैं यह सोचने लगा कि मेरा कितना धन गरीबोंके लिये सुख, शान्ति, सेवा, आराम और आनन्द खरीद सकता है । परोपकार और दानमें मैंने करोड़ों रुपया वितरित करना प्रारम्भ किया । अस्पतालों, अनाथालयों और पुस्तकालयोंमें बहुत सहायताएँ कीं । इस प्रकार मेरी नयी जिंदगी शुरू हुई और मुझे शान्त, तृप्त और दीर्घ-जीवन मिला ।'

राकफेलरने जीवनका जो नवनीत निकाला था, वह हमारे ऋषि-मुनि बहुत संक्षेपमें पहले ही इस प्रकार लिख गये हैं—

तृप्त दीर्घ-जीवनके अनमोल उपाय

सर्वस्त्विन्द्रियलोभेन संकटान्यवगाहते ।
सर्वत्र सम्पदस्तस्य संतुष्टं यस्य मानसम् ।
उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतेव भूः ॥
संतोषामृततृप्तानां यत् सुखं शान्तचेतसाम् ।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥
असंतोषः परं दुःखं संतोषः परमं सुखम् ।
सुखार्थी पुरुषस्तस्मात् संतुष्टः सततं भवेत् ॥

(पद्म० सृष्टि० १९ । २५८–२६१)

स्मरण रखिये, मनुष्यकी इन्द्रियोंके लोभग्रस्त होनेसे मनुष्यका मूल्यवान् जीवन संकटमें पड़ जाता है ।

याद रखिये—जिस मनुष्यके हृदयमें संतोष है, उसके लिये सर्वत्र धन-सम्पत्ति भरी हुई है; जिसके पैर जूतेमें हैं, उसके लिये सारी पृथ्वी मानो चमड़ेसे ढकी हुई है ।

अर्थात् संतोषरूपी अमृतसे तृप्त एवं शान्त चित्तवाले पुरुषोंको जो सुख प्राप्त है, वह धनके लोभसे इधर-उधर दौड़नेवाले लोगोंको कहाँ प्राप्त हो सकता है।

असंतोष ही सबसे बढ़कर दुःख है और संतोष ही सबसे बड़ा सुख है। अतः सुख (और दीर्घ-तृप्त जीवन) चाहनेवाले पुरुषको सदा संतुष्ट रहना चाहिये।

संतोषो वै स्वर्गतमः संतोषः परमं सुखम्।
तुष्टेर्न किंचित् परतः सा सम्यक् प्रतितिष्ठति॥
यदा संहरते कामान् कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
तदाऽऽत्मज्योतिरचिरात् स्वात्मन्येव प्रसीदति॥
न बिभेति यदा चायं यदा चास्मान्न बिभ्यति।
कामद्वेषौ च जयति तदाऽऽत्मानं च पश्यति॥
यदासौ सर्वभूतानां न द्रुह्यति न काङ्क्षति।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥

(महाभारत, शान्तिपर्व २१। २–५)

संतोष ही सबसे बड़ा स्वर्ग है। संतोष ही सबसे बड़ा सुख है। संतोषसे बढ़कर और कुछ भी नहीं है। इस संतोषकी प्रतिष्ठा—स्थिरता निम्नलिखित उपायोंसे होती है—

अर्थात् कछुवेकी भाँति जब सब ओरसे अपने अङ्गोंको समेट लेता है, तब यह स्वयंप्रकाश आत्मा शीघ्र ही भेददृष्टि-रूप मलको त्यागकर अपने ही स्वरूपमें स्थित हो जाता है।

जब न तो इसे दूसरेका भय रहता है और न इससे दूसरे भय खाते हैं और जब यह इच्छा और द्वेषको जीत लेता है, तब इसे आत्माका साक्षात्कार होता है।

जब यह मनसा-वाचा-कर्मणा किसी भी जीवके साथ न तो द्रोह करता है और न किसीसे राग ही करता है, तब इसे ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है।

इन महत्त्वपूर्ण तथ्योंका मर्म समझनेसे कोई भी मौतके मुँहसे बचकर नयी जिंदगी पा सकता है।

चिन्ता छोड़िये और प्रसन्न रहिये।

तुलसीके शब्द

(लेखक—डाक्टर हरिहरनाथजी हुक्कू, एम्० ए०, डी० लिट्०)

कविताका सृजन कल्पनाकी सहायतासे होता है और कविको यह आशा होती है कि उसका सहृदय पाठक काव्य पढ़ते समय अपनी कल्पनाको जागरूक रक्खेगा। अंग्रेजीमें एक कहावत है कि कवि ही कविको समझ सकता है। यहाँ पाठक-कविका अर्थ ऐसे व्यक्तिसे है जिसकी कल्पना-शक्ति विकसित हो और जो विद्युद्गतिसे तत्क्षण स्थितिका अपनी आँखोंके सामने सजीव चित्र खींचनेमें सशक्त हो। कविता बनाते समय कवि कभी हँसता है, कभी मुस्कुराता है, कभी चुप होकर रुक जाता है। कभी सहानुभूतिसे, कभी घृणासे, कभी क्रोधसे, कभी वेदनासे उसकी लेखनी गति पाती है। कभी वह संकोच-पूर्ण होता है, कभी व्यंग-भरा और कभी आँसुओंका पर्दा डालकर उसकी लेखनी चलती है। कवि यह नहीं बतलाता कि इस स्थानपर यों रुकना है, उस स्थानपर मेरे शब्द यह कहते हैं किंतु अर्थ कुछ और है। कविके भाव उसके शब्दोंमें छिपे रहते हैं, जैसे शान्त सरितामें उसकी सोती हुई लहरियोंका कलकल नाद। यह पाठकका कार्य है, यह उसका धर्म है कि अपनी कल्पना-द्वारा कविके यथोचित भावोंको समझे और उन भावोंका उन परिस्थितियोंके संदर्भमें मूल्याङ्कन करे, उन नाटकीय स्थलोंकी अप्रकट स्थितियोंको सामने लाये, जो कविके शब्दोंमें निहित हैं और जिनको कविने कलाकारके नाते अध-कहा, अध-खिला, अध-प्रकट करके छोड़ दिया।

महान् कलाकार कविवर तुलसीदासजीकी अनुपम कृति श्रीरामचरितमानसका पूर्ण आनन्द हमें तभी मिलेगा, जब हम अपनी कल्पनाको सजग रखकर उसका सादर पाठ करें। उदाहरणस्वरूप अयोध्याकाण्डका तीसवाँ दोहा लीजिये—

धरम धुरंधर धीर धरि नयन उघारे रायँ।
सिरु धुनि लीन्हि उसास असि मारेसि मोहि कुठायँ॥

इसका अर्थ टीकाकार यों करते हैं कि 'धर्मकी धुरीको धारण करनेवाले राजा दशरथने धीरज धरकर नेत्र खोले और सिर धुनकर तथा लंबी साँस लेकर इस प्रकार कहा कि इसने मुझे बड़े कुठौर मारा।' इस अर्थको पढ़नेसे यह लगता है कि राजा दशरथने यह वचन रानी कैकेयीसे कहे; क्योंकि कोपभवनमें उस समय केवल दो ही व्यक्ति थे—राजा और रानी—और अगर राजाने कुछ कहा तो

कैकेयीके अतिरिक्त वहाँ कौन था जिससे वे यें शब्द कहते ? परंतु ऐसी बात नहीं थी । राजा दशरथने ये शब्द कैकेयीसे नहीं कहे । वास्तविक स्थिति जाननेके लिये इस दोहेके बादकी ये चौपाइयाँ पढ़नी आवश्यक हैं—

आगें दीखि जरत रिस भारी । मनहुँ रोष तरवारि उघारी ॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई । धरी कूबरीं सान बनाई ॥
लखी महीप कराल कठोरा । सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा ॥
बोले राउ कठिन करि छाती । बानी सबिनय तासु सुहाती ॥

उपर्युक्त दोहे और चौपाइयोंको पढ़नेपर यह स्पष्ट हो जाता है कि कविवरने राजा दशरथका बोलना चौथी चौपाईमें कहा है—'बोले राउ कठिन करि छाती'। दोहेमें राजाके बोलनेका उल्लेख नहीं है। यदि हम कल्पनाकी सहायता लें तो हम देखते हैं कि राजा दशरथ प्रेमपरिपूर्ण हैं। उन्होंने कैकेयीसे प्रेमपूर्वक कहा—

तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई

और रानीको प्यारसे समझाया। उत्तरमें रानी हँसी और—

सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का

कहकर मृदुभावसे कहना आरम्भ किया, जिसको सुनकर राजा दशरथ सहम गये और कुछ बोल न सके—

'गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा'

और

'बिबरन भयउ निपट नरपालू'

और

माथें हाथ मूदि दोउ लोचन । तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ॥

इसके बाद रानी बोलती गयीं और राजा दशरथ माथे हाथ दिये दोनों आँखें बंद किये सोचमें पड़े रहे। तीसवें दोहेमें वे धैर्य धरकर आँखें खोलते हैं, परंतु बोलते नहीं हैं। आँखें खोलकर वे कैकेयीको देखते रहते हैं। वे देख रहे हैं कि कैसे—

'मनहुँ रोष तरवारि उघारी'

—के समान वे उनके सामने खड़ी हैं। राजा अभी बोलते नहीं हैं। बोलेंगे तो वे चौथी चौपाईमें। अब प्रश्न यह होता है कि 'मारेसि मोहि कुठायँ' उन्होंने कब कहा ?

पहली बात जो इस विषयमें विचारणीय है, वह यह है कि क्या रूठी भामिनीको मनानेके लिये उससे यह कहना कि तूने 'मारेसि मोहि कुठायँ' लोकव्यवहारकी दृष्टिसे नीति-संगत होगा ? क्या ऐसे उलाहनेसे भामिनीके प्रियतमके प्रति द्रवीभूत होनेकी सम्भावना प्रबल हो सकती है ? कविबर तुलसी स्वयं इस पक्षमें नहीं हैं कि ऐसी परिस्थितिमें रानीको कोई कटु शब्द राजा कहें। तभी तो वे कहते हैं कि यद्यपि रानी कैकेयी इस योग्य नहीं थीं, फिर भी छाती कठिन करके राजा दशरथ उनसे कुछ देर बाद—

'बानी सबिनय तासु सुहाती'

—बोले। इस समय तो नरपाल दशरथका एकमात्र उद्देश्य रानी कैकेयीको प्रसन्न करके अपनेको उनका प्रियतम और विश्वासपात्र सिद्ध करना है। ऐसी अवस्थामें 'मारेसि मोहि कुठायँ' ऐसे कटु शब्द इस दिशामें सहायक नहीं हो सकते हैं। इसलिये यह कहना कि ये शब्द राजा दशरथने रानीको कहे—न नीतिकी दृष्टिसे उचित है, न संदर्भके अनुसार सम्भव है, न कविकी शब्दरचनासे ध्वनित होता है। तब फिर इन शब्दोंका प्रयोग क्यों किया गया ? इसका समाधान यह है कि ये शब्द राजा दशरथद्वारा बोले नहीं गये। उन्होंने यह रानी कैकेयीसे नहीं कहा। ये शब्द राजा दशरथके मनका भाव हैं जो उनके मनमें ही रहा और जिसे उन्होंने प्रकट नहीं किया। जब 'धरम धुरंधर' कोसलेशने धैर्य धारण करके आँखें खोलीं, तब उनका भाव कैकेयी रानीके प्रति यह था कि इसने विश्वासघात करके 'मारेसि मोहि कुठायँ'। वे ये शब्द बोले नहीं। राजाके मुँहसे ये शब्द निकले नहीं। मनमें उन्होंने ऐसा सोचा। 'हाय ! प्रियतमा होकर, प्राणेश्वरी होकर, हृदयरानी होकर इसने 'मारेसि मोहि कुठायँ !!!' अप्रकट रहकर, न बोले जानेपर ये शब्द जैसा तीव्र असर करते हैं, वैसा वे मुँहसे निकलनेपर न करते। भावकी असह्य वेदनाने शब्दोंको मूक बना दिया !

इस प्रकार हम देखते हैं कि केवल शब्दोंके अर्थपर निर्भर करनेसे कविका आशय वैसा शुद्धरूपसे ग्रहण नहीं किया जा सकता, जैसा कल्पनाकी सहायतासे स्थितिको समझनेके प्रयाससे।

कभी-कभी स्थितिका पूर्ण विचार न रखनेसे कैसी भूल हो जाती है, इसका उदाहरण अयोध्याकाण्डके ७३ वें दोहेमें पाया जाता है। दोहा यह है—

समुझि सुमित्राँ राम सिय रूपु सुसीलु सुभाउ ।
नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ ॥

इसका अर्थ टीकाकारोंने यों किया है कि सुमित्राजीने श्रीरामचन्द्रजी और श्रीसीताजीके रूप, सुन्दर शील और स्वभावको समझकर और उनपर राजा दशरथका प्रेम देखकर अपना सिर पीटा और कहा कि पापिनी कैकेयीने बुरी तरह धात लगाया।

यह प्रसङ्ग लक्ष्मणजीका माँसे विदा माँगनेका है। यहाँ दो बातें विचारणीय हैं। एक तो यह कि कैकेयी सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजीके लिये वैसी ही पूज्य माता है जैसी श्रीरघुनाथजीके लिये। इसलिये सुमित्राजी कैसे अपने पुत्रके सामने उन कैकेयी रानीको पापिनी कह सकती थीं, जिनकी आज्ञा श्रीरघुनाथजीने शिरोधार्य की? सुमित्राजीका दशरथप्रियतमा रानी कैकेयीको अपने पुत्रके सामने पापिनी कहना अशिष्ट ही नहीं था बल्कि गृहकलहको प्रोत्साहित करना था। बुद्धिमती सुमित्रा रानी अपने प्रिय पुत्रको मर्यादारहित व्यवहारकी शिक्षा देकर लक्ष्मणजीके मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराघवेन्द्रके योग्य सेवक बननेकी कैसे आशा कर सकती थीं? एक बात तो यह हुई कि सुमित्राजीका रानी कैकेयीको पापिनी कहना अयोग्य और अनुचित है। दूसरी बात यह है कि सुमित्राजी तो बिल्कुल बोलीं ही नहीं, जैसा इस दोहेके पढ़नेसे स्पष्ट होता है, यद्यपि टीकाकार इस दोहेका अर्थ करते हुए कहते हैं कि सुमित्राजीने कहा कि पापिनी कैकेयीने बुरी तरह घात लगाया।

नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ॥

—कविवरके इन शब्दोंसे यह बात नहीं झलकती कि सुमित्राजीने कुछ कहा या वे मुँहसे कुछ बोली हों। सुमित्राजी बोलीं अवश्य, किंतु उनका बोलना इस दोहेमें नहीं पाया जाता। वे इसके बादवाली चौपाईमें बोलती हैं—

धीरजु धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥

तब फिर 'पापिनि दीन्ह कुदाउ' का रहस्य क्या है? इन शब्दोंको यदि सुमित्राजीने लक्ष्मणजीके प्रति मुँहसे नहीं निकाला तो ये शब्द कौन बोला और किससे बोला?

यदि हम वास्तविक स्थितिकी कल्पनाद्वारा अपने सामने सजीव करें तो हम देखते हैं कि लक्ष्मणजी अपनी जननीके सामने खड़े हैं। उन्होंने माँसे सब कथा विशेषरूपसे अर्थात् सविस्तर कह दी है। सुमित्राजी इस कथाको सुनकर सहम गयीं। लक्ष्मणजी समझते हैं कि उनकी माता पुत्र-प्रेमवश स्तब्ध हैं और अब ईश्वर जाने श्रीरघुनाथजीके साथ वनगमनकी आज्ञा देंगी या नहीं।

लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहिं सनेह बस करब अकाजू॥

परंतु सत्य कुछ और है। कर्णकटु हृदयविदारक कथा सुनकर सुमित्राजी सहम गयी हैं। राजा दशरथका कैकेयीके प्रति अगाध प्रेम और रानीका विश्वासघात, 'प्रान प्रान के जीवन जी के' श्रीरघुनाथजीका श्रीजनकललीके साथ वनगमन, मार्गमें लोगोंके इस प्रकार धिक्कारनेका भय कि—

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए बन बालक ऐसे॥

—राजा दशरथका सोच, जिनका 'जीवनु राम दरस आधीना' था—ये सब विचार सुमित्राजीके मनमें आये और परिणाम सोचकर वे सहम गयीं। उन्होंने सिर पीटा और मन-ही-मन सोचा 'पापिनि दीन्ह कुदाउ'! परंतु उन्होंने लक्ष्मणजीसे यह अपने मनकी बात कही नहीं। यद्यपि टीकाएँ यही कहती हैं कि उन्होंने लक्ष्मणजीसे ऐसा कहा। प्रिय पुत्र लक्ष्मणजीसे तो वे बड़ा धैर्य धारण करके मीठी वाणीसे बोलीं—

जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं॥
....
अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह कहना भूल है कि सुमित्राजीने लक्ष्मणजीसे कहा 'पापिनि दीन्ह कुदाउ'। ये शब्द रानी सुमित्राजीके आन्तरिक भावके द्योतक हैं। यह सुमित्राजीके ऊपर लक्ष्मणजीके राम-वनगमन-कथाकी प्रतिक्रिया थी, जो संयमद्वारा सुमित्राजीने प्रकट नहीं होने दी।

पाठककी कल्पना किस प्रकार स्थितिकी सजीव तस्वीर खींचकर अर्थको पूर्ण कर देती है। इसका एक और उदाहरण देखिये—स्थान कोपभवन; पात्र राजा दशरथ और रानी कैकेयी। कविवर कहते हैं—

बार बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि।
कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर॥

यह अयोध्याकाण्डका २५ वाँ सोरठा है। इसका अर्थ टीकाएँ इस प्रकार करती हैं कि राजा बार-बार कह रहे हैं—हे सुमुखी! हे सुलोचनी! हे कोकिलबयनी! हे गजगामिनी! मुझे अपने क्रोधका कारण सुना।

यह अर्थ देखकर ऐसा लगता है जैसे राजा दशरथ रानी कैकेयीके पास लिखित 'पेटिशन'—प्रार्थनापत्र—लेकर

गये हों और जिस प्रकार आजकल मानपत्र पढ़े जाते हैं उन्होंने उस प्रकार उसे पढ़कर सुना दिया कि हे सुमुखी, सुलोचनी, कोकिलबयनी गजगामिनी देवीजी ! मुझे अपने क्रोधका कारण सुनाओ।

यदि यह गद्यांश होता तो कदाचित् इस प्रकार अर्थ करनेमें हानि न होती। परंतु यह पद्य है; ये कविके शब्द हैं, जो कुछ कहता है, कुछ अन-कहा छोड़ देता है। कविका संसार संकेत-भरा संसार है। कविके शब्दोंमें संकेतकी भाषा छिपी रहती है—जैसे मानव-हृदयमें समवेदना। यदि समवेदना नहीं है तो वह हृदय मानव-हृदय नहीं है। जिस भाषामें संकेत नहीं है, वह भाषा है, परंतु कविकी वाणी नहीं है। कविकी बात समझनेके लिये कल्पनाकी सहायता चाहिये। बिना कल्पनाके हम शब्दोंका अर्थ समझ सकते हैं, परंतु कल्पनाकी सहायतासे हम कविका अर्थ समझ पाते हैं। प्रस्तुत प्रसङ्गमें यदि हम कल्पनाकी सहायता लें तो हम देखेंगे कि राजा दशरथ रानीको समझा रहे हैं। रानी प्राणप्रिया हैं किंतु रूठी हैं, राजाका भाव है—

मनु तव आनन चंद चकोरू।

राजा प्रियतम हैं, प्राणनाथ हैं। वे प्रेमभरे नयनोंसे रानीकी ओर देख रहे हैं। वे सोचते हैं कि कैसा सुन्दर है यह मुखड़ा जो रूठकर भी मनहर लगता है। ऐसा सुन्दर मुखड़ा तो और कहीं देखा नहीं—जिसे बरसों देखा, फिर भी नया लगता है। राजा बड़े प्रेमसे सुकोमल वाणीसे कहते हैं—

सुमुखि, कारन मोहि सुनाउ निज कोप कर।

लेकिन रूठी रानी नहीं बोलती। वह कैसी सुन्दर है, यह वह जानती है। अपने सुन्दर मुखड़ेकी प्रशंसा सुननेकी उसे आदत-सी पड़ गयी है। नित्य सुनती है, तरह-तरहसे सुनती है। इस प्रशंसासे उसका दिल न पिघला।

राजाकी आँखें रानीके मुखपर लगी हैं। 'मनु तव आनन चंद चकोरू।' वे सोचते हैं कि इस सुमुखीकी आँखें कैसी हैं! कैसी मानभरी, कैसी रंगभरी !!! लेकिन आज तो यह सीधी देखती ही नहीं है। राजा बड़े प्रेमसे सुकोमल वाणीसे कहते हैं—

सुलोचनि, निज कोप कर कारन मोहि सुनाउ।

राजाने सोचा कि रानीकी आँखें सम्भवतः अपनी प्रशंसा सुनकर राजाकी ओर देखें। लेकिन ऐसा न हुआ। रानी सयानी हैं, यों बातोंमें आनेवाली नहीं हैं। कोपभवनमें वे कुछ ठानकर आयी हैं।

राजा दशरथ बहुत दुखी हैं। हाथसे अपनेको रानी छूने भी नहीं देतीं। 'परसत पानि पतिहि नेवारई।' सरोष हैं, क्रोधसे भरी हैं। मान नहीं रही हैं। चुप हैं। कुछ बोलें तो राजा उन्हें समझावें भी। पाषाणमूर्तिको कोई कैसे समझावे ? दुखी राजा बड़े प्रेमसे सुकोमल वाणीसे फिर कहते हैं—

पिकबचनि, मोहि निज कोप कर कारन सुनाउ।

परंतु रानी नहीं बोलतीं !! राजा दशरथका दुःख बढ़ता जाता है। ऐसी सुन्दर रानी—और यह कठोर कोपभवन !! फूल-सा कोमल शरीर, जो पलंगपर गुदगुदे गद्दोंपर लेटनेके लिये विधाताने बनाया है, आज कठोर भूमिपर पड़ा है !! जिस सुन्दर शरीरके लिये कलाकारोंने आभूषण सोच-सोचकर बनाये थे, वह आभूषणहीन है। हल्के, कोमल रंग-रंगके सुन्दर वस्त्रोंसे सजनेवाला सुन्दर शरीर आज फटे-मोटे वस्त्रोंसे लिपटा पड़ा है।

भूमि सयन पटु मोट पुराना। दिए डारि तन भूषन नाना॥

राजा दशरथ बहुत दुखी हैं। वे फिर बड़े प्रेमसे सुकोमल वाणीसे कहते हैं—

कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर।

इस प्रकार राजाने रानी कैकेयीको कभी सुमुखी कहकर, कभी सुलोचनी कहकर, कभी पिकबयनी कहकर, कभी गजगामिनी कहकर उनके रूठनेका कारण पूछा। एक ही बार चारों विशेषण लगाकर एक वाक्यमें प्रश्न नहीं कर दिया। यही ध्वनि कविवरके 'बार-बार कह राउ' शब्दोंसे निकलती है।

सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि।
कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर॥

इन शब्दोंको बोलनेमें दस सेकंड लगते हैं। क्या कोई दस सेकंडोंमें सरोष रानी, रूठी रानी मनायी जा सकती है ! ऐसी बात नहीं है। कविने ये शब्द लिखकर यह भी आशा की कि पाठककी कल्पना ऐसी जागरूक होगी कि उसकी सहायतासे वह पूरे दृश्यको सजीव कर सकेगा, जिसका संकेत कविने अपने शब्दोंमें किया है।

एक और उदाहरण लीजिये—

आशुतोष प्रभु चन्द्रमौलि दूलह बनकर हिमाचलके यहाँ पधारे हैं। परंतु 'जड़ बरु बाउर' देखकर गिरिनारी विलाप करने लगती हैं। वे कहती हैं—

नारद कर मैं काह बिगारा। भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा ॥
अस उपदेसु उमहि जिन्ह दीन्हा। बौरे बरहि लागि तपु कीन्हा ॥
साचेहुँ उन्ह कें मोह न माया। उदासीन धनु धामु न जाया ॥
पर घर घालक लाज न भीरा। बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा ॥

ये चार चौपाइयाँ हैं और अधिकतर लोग इनको एक साथ पढ़ डालते हैं और इसका अर्थ उसी प्रकार एक साथ लगा देते हैं। परंतु यहाँ भी कल्पनाकी सहायतासे स्थिति समझनेका प्रयास आवश्यक है। मैना दुखी हैं। रो रही हैं। कैसा पागल आधा-नंगा दूलह आया! क्या आशा थी और क्या हुआ!!! वे अपनी अत्यन्त सुन्दर सुकुमार कन्या पार्वतीको गले लगाकर बिलख-बिलखकर रो रही हैं। क्या ऐसे 'जड़ बरु बाउर' के लिये ही पार्वतीने 'अतुल तप भारी' किया था!! रोते-रोते मैना कहती हैं—

नारद कर मैं काह बिगारा।

जब नारद आये थे तब हिमाचलने उनका कैसा स्वागत किया था, उनके चरणोंमें मैनाने सिर नवाया था, 'चरन सलिल सबु भवन सिंचावा' और उन्होंने, हाय! मुनि होकर, संत होकर—

भवन मोर जिन्ह बसत उजारा ॥

यह कहते हुए मैना फूट-फूटकर रोती हैं। हिचकी बँध जाती है और बोल नहीं सकतीं। आँसू बह रहे हैं। उन्हें पोंछती जाती हैं। फिर कुछ तबियत सँभलती है तो कहती हैं—

अस उपदेस उमहि जिन्ह दीन्हा। बौरे बरहि लागि तपु कीन्हा ॥

बिचारी सीधी-सादी भोली उमा!! क्या उसकी मति नारदने फेर दी! मैनाके आँसुओंकी धारा फिर फूट निकलती है। वर बौराह—उन्मादग्रस्त है, इस स्मृतिसे उनका दिल टूट जाता है। आँसुओंकी अटूट धाराएँ बह चलती हैं। पार्वतीको देखकर उनको यह तीर-सा लगता है कि—

कस कीन्ह बर बौराह बिधि जेहिं तुम्हहि सुंदरता दई।

और वह पार्वतीको गलेसे लगाये फूट-फूटकर रोने लगती हैं। उनका कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है। वे बोल नहीं पातीं। रोती रहती हैं, रोती रहती हैं। फिर कुछ देर बाद उनके मुँहसे निकलता है—

साचेहुँ उन्ह कें मोह न माया। उदासीन धनु धामु न जाया ॥

और हिचकियाँ लेती हुई वे कहती हैं—

पर घर घालक लाज न भीरा।

और फिर दुःखसे तड़पकर बोलती हैं—

बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा।

यह कहकर उनके दुःखका अन्त नहीं रहता।

मैनाका रोना, उनकी अटूट अश्रुधारा, उनका हिचकियाँ भरना, उनका अवरुद्ध कण्ठ, उनका 'वरु बौराह' की याद करके सुकुमारी पार्वतीको देखकर हृदयविदारक दुखकी विकलताका चित्र कल्पना ही खींच सकती है और इसी कल्पनाके द्वारा इन चौपाइयोंका ठीक अर्थ समझमें आता है।

कभी-कभी कविवर तुलसीके शब्दोंमें अकारण पुनरावृत्ति दिखायी देती है और आश्चर्य होता है कि तुलसी-ऐसे महान् कलाकार शब्दोंका व्यर्थ प्रयोग करें, जैसे कोई रत्नोंका बिना मूल्य समझे उन्हें सड़कपर फेंक दे। उदाहरण लीजिये। कथा किष्किन्धाकाण्डकी है—

'रघुपतिप्रियभक्तम्' मारुतसुतके माध्यमसे श्रीरामसुग्रीव-मिताई हो गयी है।

कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा। लछिमन राम चरित सब भाषा ॥
कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलिहि नाथ मिथिलेस कुमारी ॥
मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा। बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा ॥
गगन पंथ देखी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता ॥
राम राम हा राम पुकारी। हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी ॥
मागा राम तुरत तेहिं दीन्हा। पट उर लाइ सोच अति कीन्हा ॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा ॥
सब प्रकार करिहउँ सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई ॥

जब सुग्रीवने ऐसा विश्वास दिलाया कि वे सब प्रकारसे करुणानिधानकी ऐसी सेवा करेंगे कि 'प्रभुको कुछ भी श्रम नहीं करना पड़ेगा और जैसे अनायास जानकीजी हर ली गयी थीं, वैसे ही वे स्वयं प्रभुके पास आ जायँगी' तब श्रीरघुनाथजीका धर्म था कि वे सुग्रीवसे उसके दुःखका कारण पूछकर इसके निवारणार्थ कुछ आश्वासन कपिपतिको देते। सखाधर्म तो यही बतलाता है। अतएव प्रभु पूछते हैं—

सखा बचन सुनि हरषे कृपासिंधु बलसींव।
कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव ॥

अब यहाँ विचारणीय यह है कि 'कारन कवन बसहु बन' प्रभुका प्रश्न है। 'तुम किस कारण वनमें रहते हो ?' यह पूरा प्रश्न है। प्रश्न करनेवाला उत्तरकी प्रतीक्षामें है। उत्तर इस प्रश्नकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। यदि कोई व्यक्ति असमय हमारे यहाँ आये तो हम उससे पूछते हैं, 'कहो, भाई, कैसे आये ?' जिसके उत्तरमें वह अपना हाल-चाल हमें बतलाता है। हमारा प्रश्न होता है, 'कैसे आये ?', जिसका अर्थ होता है कि तुम कैसे आये, यह हमको बतलाओ। हम यह तो प्रश्न नहीं करते कि 'तुम कैसे आये, इसका उत्तर हमको दो।' जब विद्यार्थी कक्षामें देरसे पहुँचता है तो अध्यापक पूछते हैं, 'तुम देरसे क्यों आये ?' ऐसा प्रश्न तो अध्यापक नहीं करते हैं कि 'तुम देरसे क्यों आये, इसका उत्तर तुम हमको दो, जो तुमसे यह प्रश्न कर रहे हैं।' 'कैसे आये ?' या 'तुम देरसे क्यों आये ?'—ऐसे प्रश्नोंमें यह वाक्य छुपा हुआ है कि 'इसका उत्तर मुझको दो।' प्रश्न करनेमें ही यह भाव आ गया। इसलिये जब प्रभुने सुग्रीवसे पूछा 'कारन कवन बसहु बन?' तो इस प्रश्नमें यह बात सांकेतिकरूपसे छुपी हुई थी कि 'मोहि कहहु सुग्रीव।' प्रश्न जब श्रीराघवेन्द्रका है तो उत्तर इसका उनको ही तो दिया जायगा। 'मोहि कहहु सुग्रीव' का अनावश्यक प्रयोग क्यों हुआ ?

इसका समाधान करनेके लिये कल्पनाकी सहायतासे वास्तविक स्थिति हमें अपनी आँखोंके सामने लानी पड़ेगी। यहाँ श्रीरघुनाथजी हैं, सुग्रीव हैं, लक्ष्मणजी हैं और मारुतसुत हैं। हनुमान्‌जीने श्रीरघुनाथजी और कपिपतिकी 'जोरी प्रीति दृढ़ाइ'। इसके बाद लक्ष्मणजीने सब रामचरित कहा, जिसे सुनकर सुग्रीवकी आँखें भर आयीं। राम-कथा सुननेके प्रतिक्रियास्वरूप सुग्रीवकी आँखोंमें आँसू भर आये, जिससे यह प्रतिध्वनित हुआ कि वे प्रभुके सच्चे सखा हैं; क्योंकि वे मित्रका दुःख सुनकर दुखी हुए। उन्होंने श्रीजानकीजीका वस्त्र लाकर करुणानिधानको दिया, जिसे गले लगाकर प्रभुने ऐसा विरह-नाटक किया कि सुग्रीवको बहुत दुःख हुआ और श्रीरघुनाथजीको सान्त्वना देते हुए उन्होंने यह विश्वास प्रभुको दिया कि 'उनसे श्रीजानकीजी स्वयं आ मिलेंगी।' इस प्रकार दो बार सुग्रीवने अपनी सच्ची मित्रताका प्रमाण दिया। अब प्रभुने अपने सखाका दुःख पूछा।

कारन कवन बसहु बन—

श्रीरघुनाथजीका यह प्रश्न है। परंतु सुग्रीव चुप रहे। सुनकर राजीव...

कुछ उत्तर न दिया। मारे लाजके चुप रहे। क्या कहते कि बड़े भाईने 'हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी'। 'हरि लीन्हेसि सर्बसु' तक तो फिर भी सह्य था; परंतु 'अरु नारी' से तो नाक कट गयी। कपिपति संकोचवश चुप रहे। अन्तर्यामी प्रभु उनकी ओर कृपादृष्टिसे देख रहे हैं। वे समझ गये कि सुग्रीवको कुछ संकोच है, जिसके कारण वे चुप हैं। जब कपिपति कुछ देरतक नहीं बोले, तब प्रभुने प्रश्न दोहराया—

मोहि कहहु सुग्रीव।

'मुझसे कहो, हे सुग्रीव!' मुझसे—'मोहि' पर यहाँ बल है। 'मोहि' कौन ? जिनकी मित्रताके साक्षी स्वयं अग्निदेव हैं, जिनके अलौकिक चरित्रको स्पष्टरूपसे लक्ष्मणजीने कहा था, जिनसे पूर्णरूपसे हनुमान्‌जीने 'जोरी प्रीति दृढ़ाइ' थी और जिनसे सुग्रीवने 'कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा।' जिन श्रीरघुनाथजीको देखकर सुग्रीवको ऐसा लगा कि यह 'कृपा-सिन्धु' और 'बलसींव' हैं—ऐसे 'मोहि' से सखा सुग्रीव सब बात कहो। सहानुभूति और प्रेमपूर्वक प्रश्नकी पुनरावृत्तिसे—दूसरे बार प्रश्न नाम लेकर करना प्रेम-सूचक है—कपिपतिको प्रभुकी समवेदना और सहायतामें विश्वास उत्पन्न हुआ और तब उन्होंने संकोच त्यागकर श्रीरघुनाथजीको अपना दुःखपूर्ण वृत्तान्त सुनाया। कपिपतिने दो बार करुणानिधानके प्रति अपनी सच्ची मित्रताका प्रमाण दिया था। प्रभुने भी दो बार प्रश्न करके सुग्रीवके प्रति अपनी सहानुभूति दिखायी। यदि हम इस पूरी पंक्ति—कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव—का एक साथ अर्थ करें तो कपिपतिकी मनोवैज्ञानिक स्थिति हमारी आँखोंके सामने नहीं आती और न प्रश्नकी पुनरावृत्तिका समाधान मिलता है।

इसी प्रकारका एक और उदाहरण लीजिये। कविवर कहते हैं—

रिषिन्ह गौरि देखी तहँ कैसी। मूरतिमंत तपस्या जैसी॥
बोले मुनि सुनु सैलकुमारी। करहु कवन कारन तपु भारी॥
केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू। हम सन सत्य मरमु किन कहहू॥

इनका अर्थ टीकाओंमें इस प्रकार दिया है कि 'ऋषियोंने पार्वतीजीको कैसी देखा मानो मूर्त्तिमान् तपस्या ही हों। मुनि बोले—हे शैलकुमारी! सुनो, तुम किस लिये इतना कठोर तप कर रही हो ? तुम किसकी आराधना करती हो और क्या चाहती हो ? हमसे अपना सच्चा भेद क्यों नहीं कहतीं ?' चौपाइयाँ सरल हैं; परंतु यदि हम इनका ठीक अर्थ समझना

चाहते हैं तो हमारे लिये कल्पनाकी सहायतासे वास्तविक स्थितिकी तस्वीर खींचना अत्यन्त आवश्यक है।

जब शंकरभगवान्के पास सप्त ऋषि पहुँचे, तब उन्होंने पार्वतीजीकी प्रेमपरीक्षाके लिये इन महात्माओंको भेजा। ये महात्मा हवाईजहाजमें बैठकर भड़भड़ करते हुए नहीं आये, न मोटरमें बैठकर जोरोंसे होर्न बजाकर पों-पों करते आये, वे खड़ाऊँ पहनकर खट-खट करते हुए भी नहीं आये। वे चुपकेसे आये, आहिस्तासे आये, धीमे-धीमे आये, आदरपूर्वक आये। वे तपस्विनी, अनन्त-प्रेम-अम्बुधि-मग्ना पार्वतीजीका ध्यान खट-खट करके भग्न करना नहीं चाहते थे। सप्तऋषि इतने धीमे और आहिस्तासे आये, इतना आदरसहित आये कि कविवर तुलसीको उनके आनेकी आहटतक नहीं मिली। इसीलिये कविवरने सप्तऋषियोंका आना स्पष्ट नहीं किया। सप्तऋषि जब वहाँ पहुँचे, उन्होंने देखा कि चारों ओर सन्नाटा है। एक अत्यन्त गम्भीर शान्ति है और प्रेममग्ना पार्वतीजी मूरतिवंत तपस्या बनी बैठी हैं और उनकी तपस्यासे वहाँका वातावरण प्रेम-रस-विभोर हो रहा है। उनका यह स्वरूप उस घनी शान्तिमें देखकर महात्मा लोग स्तब्ध हो गये और थोड़ी देरतक उनके मुँहसे कोई शब्द न निकला। फिर महादेव शंकरभगवान्का आदेश उन्हें याद आया और वे सप्रेम, सादर, मधुर स्वरमें धीरेसे बोले—

सुनु सैलकुमारी,

कुछ देर बाद पार्वतीजीने आँखें खोलीं। थोड़े समयतक सप्तऋषि उन्हें सादर देखते रहे; क्योंकि पार्वतीजी विशेष प्रकारसे सुकुमार थीं।

अति सुकुमार न तनु तप जोगू।

परंतु इतनी सुकुमार होते हुए भी उन्होंने ऐसी तपस्या की थी कि आकाशवाणीने कहा—

अस तपु काहु न कीन्ह भवानी। भए अनेक धीर मुनि ग्यानी॥

ऐसी अनुपम तपस्यारत पार्वतीजीको ये महात्मा लोग सादर देखते ही रहे। फिर उन्होंने मधुर स्वरसे पूछा।

करहु कवन कारन तपु भारी।

यह प्रश्न करके महात्मालोग चुप हो गये। परंतु पार्वतीजीने कुछ उत्तर नहीं दिया। अभी तपस्याका खुमार बाकी था। वे ठीक प्रकारसे वर्तमानमें नहीं आयी थीं। फिर कुछ क्षण पश्चात् ऋषियोंने पूछा—

केहि अवराधहु—

पार्वतीजी चुप थीं। वे क्या उत्तर देतीं? वे अपने निजके उत्तराङ्गकी आराधनामें थीं, शिवा शिवस्वरूपा हो रही थीं—क्या उत्तर देतीं? पार्वतीजी चुप थीं। प्रश्नकर्त्ता ऋषि थे, द्रष्टा थे। वे देखकर स्वयं समझ सकते थे। वे पार्वतीजीसे कहलवाना क्यों चाहते थे? इनकी तपस्याकी कथा विश्वविख्यात थी। पार्वतीजी कुछ न बोलीं। सप्तऋषियोंने एक बार फिर पूछा—

का तुम्ह चहहू,

किसकी आराधना है और किस लाभार्थ? आखिर ये महात्मालोग प्रेम-परीक्षा जो ले रहे थे। ये पार्वतीजीके मौनसे कैसे संतुष्ट हो जाते?

परंतु पार्वतीजीने अब भी कोई उत्तर नहीं दिया। उत्तर क्या देतीं? कोई चाह थी ही नहीं। अकाम शिवकी आराधनामें कामना कैसी? पार्वतीजीको यह प्रश्न निरर्थक लगा। वे चुप रहीं। सप्तऋषियोंने तीन प्रश्न किये। ऐसा भारी तप क्यों, किसकी आराधनामें और किस लाभार्थ कर रही हो—ये प्रश्न थे; परंतु तपस्यासे जगी पार्वतीजी चुप थीं। अब महात्मालोगोंसे न रहा गया। जिस प्रेमपरीक्षाकार्यके कारण वे आये थे, वह ठीकसे पूरा नहीं हो रहा था। अतएव उन्होंने फिर पूछा—

हम सन सत्य मरमु किन कहहू।

'हमसे'—यहाँ 'हम' पर विशेष बल है—सत्य मर्म क्यों नहीं कहती हो? 'हम' कौन? निष्काम संत—

संत सरल चित जगत हित,

जो लोक-कल्याणार्थ जीवन व्यतीत करते हैं, जिनका सबके प्रति सम भाव है। हे पार्वती! तुम ऐसोंसे अपना 'मरमु'—अपनी गुप्त बात क्यों नहीं कहतीं? जब इन महात्माओंने 'हम' पर विशेष बल देकर प्रश्न पूछा, तब पार्वतीजीको इस बातका ध्यान आया कि उनके सामने जगत्-वन्द्य ऋषि खड़े हैं और वे प्रश्न प्रेमपूर्वक पूछ रहे हैं और यह चुप हैं। बराबर प्रश्न सप्रेम पूछनेपर उत्तर न देना अभिमानसूचक अथवा निरादरसूचक है। और फिर ये तो साधुलोग ठहरे—

साधु ते होइ न कारज हानी।

तब पार्वतीजीने बहुत सकुचाते हुए उत्तर दिया।

इस स्थलकी चौपाइयोंको यदि हम एकके बाद दूसरी पढ़ डालें और एक ही प्रवाहमें उनका अर्थ कर डालें परंतु कल्पनाकी सहायतासे स्थितिका चित्र अपने सामने न खींचें तो हमको इस प्रसङ्गका न नाटकीय मूल्य (ड्रमैटिक वैल्यु-एशन) समझमें आयेगा, न इस प्रसङ्गके इन्द्रधनुषके समान क्षण-क्षण बदलते भावोंका आनन्द मिलेगा। जैसा प्रारम्भमें कहा था—एक कविको कवि ही भलीभाँति समझ सकता है, इसलिये गोस्वामी तुलसीदासजीकी रचनाके अर्थ, भाव और रस समझनेके वास्ते हमें सुसंस्कृत कल्पनाकी सहायता लेना अनिवार्य है; क्योंकि तुलसी भक्तराज ही नहीं थे, वे एक अलौकिक कलाकार थे।

मनसुख-विरह-शतक

(रचयिता—श्रीजसवंतजी रघुवंशी)

[गताङ्क पृष्ठ ९८३ से आगे]

(५६)

बिछुड़कर माधवसे हो गयी
मनसुखा बीरन! दशा विचित्र।
बदलते रहते पल-छिन हाय!
हृदय-पटपर भावोंके चित्र॥
कभी लगता है—जैसे देख
मुझे हँसती है सारी सृष्टि।
और फिर ऐसा लगता कभी,
कर रही है आँसूकी वृष्टि॥
हँसाते कभी, रुलाते कभी,
विहँसते मुरझाते-से फूल।
विकल करती है जिनकी चुभन,
कभी प्यारे लगते वे शूल॥
कभी लगती है इतनी मधुर
विरहकी दहकी-दहकी आग।
कि जिसमें डूबी-डूबी साँस
बढ़ाया करती है अनुराग॥
और फिर कभी जहर-से लगें
उसीके लाल-लाल अङ्गार।
सजाते जब स्वासोंको पुलक,
मिलनके स्वप्न, बने शृङ्गार॥

(५७)

झूमता है मेरा हर रोम,
कभी जब बनता ऐसा चित्र।
कि जैसे घूम रहा है संग,
मनसुखा भैया! तेरा मित्र॥

और फिर हाय! नहीं जब पास
दीखता है वह जीवनमूर।
भटकते रहते व्याकुल नैन
क्षितिज-सीमाओंमें अति दूर॥
कभी काटा करती है कुञ्ज,
कभी मिलता उनमें आवास।
कभी भरती उरमें उन्माद,
कभी तड़पाती है बरसात॥
कभी ये काले-काले मेघ
मिलनके सुखका देते स्वाद।
कभी भरते प्राणोंमें व्यथित
विरहकी पीड़ाका अवसाद॥
हाय! यह आँखमिचौनी नहीं
कभी क्या हो पायेगी बंद।
सतायेंगे कबतक यों, अरे!
बिछुड़ने-मिलनेके ये छन्द॥

(५८)

किंतु जिस दिन था मैंने तुम्हें
निहारा कालिन्दीमें, भ्रात!।
बढ़ रहा है तबसे हर समय
विकल पीड़ाओंका उत्पात॥
सुहाता नहीं लुभाता प्रात,
रिझाती नहीं सिंदूरी साँझ।
नहीं पाती हूँ लाखों जगह
छिदे-टूटे इस मनको राँझ॥

बनाते हैं अब वे सब स्थान
हृदयमें गहरे-गहरे घाव।
जलाते हैं मेरा हर रोम
मिलनके खट्टे-मीठे भाव॥
आँख भर देखा जाता नहीं
हाय! अब नंदगाँवकी ओर।
उठाते ही ऊपरको पलक
छलक पड़ती है भर-भर कोर॥
गिरी है ऐसी बिजली, अरे!
राखकी ढेरी हुआ शरीर।
न देता निमिष मात्र भी साथ,
मनसुखा बीरन! मेरा धीर॥

(५९)

मनायेगा अब मुझको कौन,
करूँगी अब मैं किससे मान।
सोचते ही दुखसागर मध्य
डूब जाता मेरा सुख-यान॥
बुलायेगा अब कोई नहीं
मिलन-रसमें हो प्रेमविभोर।
टीसता है कर-कर यों याद,
मनसुखे भैया! दर्द अछोर॥
सुनायी नहीं पड़ेगी, हाय!
अरे, अब मुरलीकी मधु टेर।
घूमते ही मनमें यह बात,
गिरे बिजली-सी लाखों बेर॥
हो गये हैं पर इतने वज्र,
मनसुखा बीरन! मेरे प्रान।
तड़पते, घुटते, पिसते रहें—
न पर चाहें निष्ठुर अवसान॥
दीखती नहीं पल्लवित हाय!
हृदय-काननकी कोई डाल।
कर गया जबसे वज्र-निपात,
मनसुखे! तेरा प्रिय गोपाल॥

(६०)

जगाता नहीं हाय! अब कोइ
अमृत-सा घोल बड़े ही भोर।
सालती है प्राणोंको हाय!
प्रात अब विहगवृन्दकी रोर॥
सजायेगा भी कोई नहीं,
अरे! कर पुष्पोंसे श्रृङ्गार।
जानकर चुभें शूल-से हाय!
वस्त्र-भूषणके प्रिय अंबार॥
मिलेगा नहीं हाय! अब कभी
मधुर मीठे करका सुस्पर्श।
समझ निश्चित, मेरा हर अङ्ग
छटपटा रह जाता है तरस॥
न होंगे क्या अब भैया! कभी
निठुर उस मनमोहनके दरस।
देख तो, मेरे आकुल नैन
रहे हैं कबसे रिमझिम बरस॥
न जाने कैसे काले अङ्क
लिखे विधनाने मेरे भाल!
ले गया लूट सभी सुख-चैन,
मनसुखा! तेरा प्रिय गोपाल॥

(६१)

एक दिन बढ़ी अमित जब पीर,
गयी मैं भैया! सेवाकुञ्ज।
वहाँ भी मिला निगोड़ा हाय!
विरहका दहका-दहका पुञ्ज॥
तड़पती थी हर व्याकुल बेल,
सिसकता था हर लता-वितान।
छिन गयी थी अधरोंसे हाय!
मधुर वल्लरियोंकी मुसकान॥
न पूछो अब उस स्थलका हाल,
राससे जब-तब होकर श्रान्त।
विगतश्रम होते सबके साथ—
श्याम था हा! कितना उद्भ्रान्त॥
पीरकी व्यथा-भरी-सी हूक
रही थी पात-पातसे फूट।
हाय! उन सबको ऐसे देख,
गया मेरा सब धीरज छूट॥
वहीं उस श्याम-कुञ्जके निकट
गिरी मैं हो बेसुध, बेहाल।
न पिघला फिर भी निर्दय हाय!
मनसुखा! तेरा प्रिय गोपाल॥

(६२)

खोजती फिरती मुझको वहाँ
तभी यह ललिता पहुँची आय ।
बँधाती थी रो-रोकर धीर,
स्वयं भर-भर अति गहरी हाय ॥
पहुँच उस नीरकुंडके निकट
लगीं हम होने पुनः अचेत ।
श्यामने बनवाया था जिसे,
हाय ! उस प्रिय ललिताके हेत ॥
सलिलकी सहलाता था पीर,
लहरका व्याकुल कलकल-गान ।
विलखता था सूनापन भरे,
प्राणमें जिसका हर सोपान ॥
रुदन हम दोनों करती रहीं
वहाँपर बड़ी देरतक बैठ ।
रहा था जैसे कोई हाय !
कलेजा भीतर-भीतर पैंठ ॥
समझ तुझको अपना-सा दुखी
सुना बैठी हूँ भैया ! हाल ।
भर गया है नस-नसमें पीर,
मनसुखा ! तेरा प्रिय गोपाल ॥

(६३)

कामवन, निधिवन, मधुवन—सभी
जलाते हैं, बस, इसी प्रकार ।
निकलते हैं हा ! फिर भी नहीं,
अरे इन प्राणोंको धिक्कार ॥
कृष्णके जाते ही ये हाय !
गये क्यों नहीं निकल भर हूक ?
बिछुड़ते ही मोहनके अरे,
बिलखकर हुए न क्यों सौ टूक ? ॥
अभागे पाते कल पल-निमिष
न, जलते रहते हैं दिन-रात ।
एक ही धुनमें रहते मग्न,
न सुनते और किसीकी बात ॥
बसाये बैठे हैं चुपचाप,
न जाने पागल कैसा मोह !
सतानेपर भी जिनको हाय !
मधुर लगता है विषम विछोह ॥
समझ बैठे हैं शायद, अरे—
कभी तो आयेंगे नंदलाल ।
निठुर हैं इतने नहीं कदापि,
हाय ! वह प्रिय कोमल गोपाल ॥

(६४)

मनसुखे ! यही आशाका तन्तु
बना है स्वासोंका आधार ।
नहीं तो अबतक कबकी छोड़
भाग जातीं तन-कारागार ॥
और फिर मैं ही तो हूँ नहीं
अकेली व्रजमें अधिक अधीर ।
यशोदा मैया भी तो नहीं
सह रही होंगी कुछ कम पीर ॥
सुना है वे तो निशिदिन तड़प
भरा करती हैं ऐसी हाय ।
जिस तरह डकराती है, अरे !
बिछुड़ बछड़ेसे कोई गाय ॥
कई दिन सोचा है धर धीर,
चली जाऊँ भैया ! नँदगाँव ।
बिलखती उस मैयाके अरे,
एक दिन तो छू आऊँ पाँव ॥
किंतु लखते ही घरका द्वार
विवश गिरती हूँ हुई निढाल ।
मिलूँगी कैसे उससे, हाय !
छुटा जिसकी गोदीका लाल ॥

(६५)

देख मुझको माधवके साथ
पैर धरते ही घरके द्वार ।
झूम सुखसे, छातीसे लगा,
प्यार करती रह-रह पुचकार ॥
मलाई-माखन-मिश्री हाय !
खिलाती जो कर-कर मनुहार ।
निरखती हम दोनोंकी ओर,
बलैयाँ लेती सौ-सौ बार ॥
हाय ! उस माँका टूटा हृदय,
नयनके आँसूकी जलधार ।
फटी छातीके अब गिन टूक,
प्राणकी पीड़ाओंका ज्वार ॥

विलखते अधर, काँपते चरण,
थरथराते हाथोंकी पीर ।
हाय ! उस करुणमूर्तिको देख
रख सकूँगी मैं कैसे धीर ॥
न जाने देते मुझको वहाँ,
मनसुखा भैया ! ऐसे ख्याल ।
कर गया है हा ! कितना विवश
कृष्ण केशव माधव गोपाल ॥
(६६)
हाय ! उस घरके आँगन-द्वार
रहे होंगे कितना दुख ढाल ।
छुप गया है प्राणोंका प्राण
खेलकर जिसमें ग्यारह साल ॥
दिखायी देते होंगे हाय !
अनेकों विकल विलखते दृश्य ।
तड़पता होगा जिनसे बिंधा
और भी व्याकुल बना भविष्य ॥
सुनाती होगी हर दीवार,
अरे ! जब गीले-गीले गीत ।
हाय ! तब वर्तमानकी और
बढ़ाता होगा पीर अतीत ॥
मनसुखा भैया ! तू ही बता,
हाय ! क्यों उस घरका संसार ।
न मेरे ही ऊपर बन निठुर,
और बरसायेगा अङ्गार ॥
मनसुखा वीरन मेरे हाय !
किस तरह पूरूँ उरके साल ।
और भी करता गहन कुरेद
यादसे तेरा प्रिय गोपाल ॥
(क्रमशः)

गीतामें सत् और असत्का विवेक

(लेखक—डा० कन्हैयालालजी सहल, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने 'सत्' को अनेक अर्थोंमें प्रयुक्त माना है

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥
(१७ । २६)

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥
(१७ । २७)

अर्थात् सत्य भाव, श्रेष्ठ भाव तथा उत्तम कर्मके लिये 'सत्' शब्दका प्रयोग किया जाता है । यज्ञ, तप और दानमें जो स्थिति है, वह भी 'सत्' कही जाती है और उस परमात्माके अर्थ किया हुआ कर्म भी निश्चित रूपसे 'सत्' ही कहा जाता है ।

उक्त श्लोकोंसे स्पष्ट है कि गीताकार 'सत्' को सत्यं तथा शिवंसे सम्बद्ध मानते हैं तथा उनकी दृष्टिमें ईश्वरार्पण-बुद्धिसे किया हुआ कर्म भी 'सत्' के ही अन्तर्गत है । जिसकी त्रिकालाबाधित सत्ता हो, उसे 'सत्य' का नाम दिया जा सकता है । साधु-भाव अथवा शिवत्वके कारण ही कोई वस्तु तीनों कालोंमें स्थिर रह सकती है । इससे सिद्ध है कि सत्यं तथा शिवं एक ही सिक्केके दो पहलू हैं । जो असत् अथवा मिथ्या है, उसके पाँव नहीं होते और 'साँचको कभी आँच नहीं होती ।' पुष्प सुन्दर लगता है, फलके रूपमें परिणत होकर वह 'शिवं' का रूप धारण कर लेता है; किंतु जिन नियमोंसे पुष्प फलमें परिणत होता है, वे नियम 'सत्यं' के अन्तर्गत हैं । इस दृष्टिसे विचार किये जानेपर तो न केवल 'सत्य' और 'शिव' ही, बल्कि 'सुन्दरं' भी एक ही सूत्रमें आबद्ध जान पड़ते हैं । किंतु उक्त श्लोकोंमें गीताकारकी दृष्टि 'सत्यं' और 'शिवं' की ओर ही रही है । गीतामें 'सत्' का उक्त विवेचन 'ॐ तत्सत्' के संदर्भमें हुआ है । इसी प्रसङ्गमें 'असत्' के सम्बन्धमें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥
(१७ । २८)

जो यज्ञ, दान, तप या अन्य कोई कार्य बिना श्रद्धाके होता है, वह असत् कहलाता है । वह न तो यहाँके कामका है, न परलोकके लिये उपयोगी है । गीतामें अन्यत्र भी 'श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।' कहकर

श्रद्धाकी बड़ी प्रशस्ति की गयी है। यह निस्संदेह सत्य है कि श्रद्धाके बिना सत्यं तथा शिवंके प्रति कोई लगाव पैदा नहीं होता। जिस वृत्तिके कारण मनुष्य सद्भाव तथा साधुभावको दृढ़तासे पकड़े रहता है, उसे ही श्रद्धाका नाम दिया जाना चाहिये। जहाँ श्रद्धा नहीं, मनका लगाव नहीं, वहाँ कोई भी कार्य भाररूप, मिथ्या और व्यर्थ हो जाता है। इसलिये बिना श्रद्धासे किये हुए यज्ञ आदिको यदि असत् कहा जाय तो यह सर्वथा उचित ही है। श्रद्धाका सम्बल जिनके पास नहीं, उनके लिये तुलसीने भी 'रामचरितमानस' को 'अगम' ठहराया है। गोस्वामीजीके शब्दोंमें—

जे श्रद्धा संबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन्ह कहँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ॥

मार्कण्डेयपुराणके 'देवीमाहात्म्यम्' में भी 'श्रद्धा सताम्' कहकर सत्य और श्रद्धाका अभिन्न सम्बन्ध स्थिर किया गया है। कुछ विद्वान् तो 'श्रत्' को सत्यके अर्थमें ग्रहणकर 'श्रद्धीयते अस्याम् इति श्रद्धा' इस प्रकार 'श्रद्धा' शब्दका निर्वाचन करते हुए बतलाते हैं कि सत्य ही श्रद्धाका अनिवार्य गुण है। समूचे वैदिक तथा परवर्ती साहित्यमें श्रद्धाका गुणगान किया गया है। ऋग्वेदमें तो श्रद्धापर पूरा सूक्त ही उपलब्ध है। आधुनिक युगमें महाकवि जयशंकरप्रसादने अपनी 'कामायनी' महाकाव्यद्वारा श्रद्धाको जो गौरव प्रदान किया है, वह सदैव स्मरणीय रहेगा। श्रद्धा और सत्यका यदि समवाय-सम्बन्ध है तो सत्यके महत्त्वकी भाँति श्रद्धाका महत्त्व भी कभी पुराना नहीं पड़ेगा।

सत् और असत्की समस्याके सम्बन्धमें गीताका बहुचर्चित तथा अनेकधा व्याख्यात सुप्रसिद्ध दार्शनिक श्लोक निम्नलिखित है—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥
(२।१६)

अर्थात् जो असत् है, उसका अस्तित्व कभी हो नहीं सकता और जो सत् है, उसका अभाव कभी सम्भव नहीं। तत्त्वदर्शी लोग इन दोनों बातोंका अन्ततक विचार करके सिद्धान्तपर पहुँच चुके हैं।

सांख्यदर्शनको 'सत्कार्यवाद' का सिद्धान्त मान्य है, जिसके अनुसार उत्पत्तिसे पूर्व भी कार्य-कारणमें अवश्यमेव अव्यक्तरूपसे विद्यमान रहता है। इस प्रकार कार्य तथा कारणकी वस्तुतः अभिन्नता है। कार्यकी अव्यक्तावस्थाका ही नाम कारण है और कारणकी व्यक्तावस्था ही कार्य है। इस प्रकार कार्य-कारणका भेद व्यावहारिक है, परंतु अभेद तात्त्विक है। इस सिद्धान्तको 'परिणामवाद' भी कहते हैं।* दहीमें मक्खन पहलेसे ही है, उसे ही बिलोकर प्रकट कर दिया जाता है। सिकतासे तैल नहीं निकाला जा सकता; क्योंकि उसमें तैल ही नहीं है, किंतु तिलोंसे तैल निकाला जाता है; क्योंकि उनमें तैल पहलेसे ही अव्यक्तरूपमें व्याप्त रहता है। इसी प्रकार तन्तुसे वस्त्र तथा स्वर्णसे कुण्डल आदिके निर्माणमें भी मात्र रूपान्तर होता है, वस्तुतः कोई नयी वस्तु नहीं बनती। वेदान्तदर्शनके आचार्य तो इससे भी आगे बढ़कर केवल एक ही मूल तत्त्वको 'सत्' मानते हैं, रूपान्तर भी उनकी दृष्टिमें 'असत्' ही है, उसकी कोई वास्तविक सत्ता नहीं। इसी तरह प्रकाश और अन्धकारका द्वैत भी केवल काल्पनिक है। भावात्मक सत्ता तो प्रकाशकी ही है, अन्धकार तो उसका निषेधमात्र है।

'सत्' और 'असत्' सम्बन्धी अभिप्राय बहुत प्राचीन है। वृत्र और इन्द्रका युद्ध (जिसका ऋग्वेदमें वर्णन हुआ है) वस्तुतः प्रकाश और अन्धकारका युद्ध है। देव और असुर क्रमशः प्रकाश और अन्धकारके प्रतीक हैं। शतपथब्राह्मणमें सत् और असत् प्रवृत्तियोंके इस द्वन्द्व अथवा संघर्षको 'दैवासुरम्' के नामसे अभिहित किया गया है। यद्यपि ऋग्वेदकी ऐतिहासिक व्याख्या करनेवाले कुछ विद्वानोंने वृत्र और इन्द्रके युद्धको अनार्य तथा आर्योंके बीच युद्धके रूपमें ग्रहण किया है, तथापि शतपथब्राह्मणके निम्नलिखित उल्लेखसे स्पष्ट हो जाता है कि देवासुर-संग्रामको प्रतीकरूपमें ग्रहण करनेपर ही सम्पूर्ण प्रसङ्गोंका सम्यक् सम्भव है—

'तस्मादेतदृषिणाभ्युक्तम्।

न त्वं युयुत्से कतमच्चनाहर्न मित्रो मघवन् कश्चनास्ति।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं न नु पुरा युयुत्सः॥
(शतपथब्राह्मण ११।१।६।१०)

अर्थात् हे मघवन् (इन्द्र)! तूने एक दिन भी युद्ध नहीं किया है, न तेरा कोई शत्रु ही है। तेरे युद्धोंके सम्बन्धमें लोग जो चर्चा करते हैं, वह केवल माया है, न तो आज और न कभी पहले ही तूने किसी शत्रुसे युद्ध किया है। शतपथ-

* द्रष्टव्य भारतीय दर्शन (बलदेव उपाध्याय) पृ० ३२४

ब्राह्मणमें ही नहीं, ऋग्वेदके दशम मण्डलमें भी प्रकारान्तरसे यही अभिमत प्रकट किया गया है—

मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्से ॥
(ऋग्वेद १० । ५४ । २)

वैदिक साहित्यमें जिन घटनाओंका वर्णन हुआ है, वे सब ऐतिहासिक हैं अथवा प्रतीकात्मक हैं, इस सम्बन्धमें अनेक विवादास्पद मतोंको देखते हुए 'इदमित्थं' कहना भले ही सम्भव न हो, तथापि यह मानना होगा कि हमारे देशमें वैदिक साहित्यकी अपने-अपने ढंगसे व्याख्या करनेवाले विद्वानोंके दो सम्प्रदाय थे—ऐतिहासिक सम्प्रदाय तथा नैरुक्त सम्प्रदाय। ऐतिहासिक सम्प्रदायके व्याख्याता वे हैं जो घटनाओंका प्रतीकात्मक अर्थ करते हैं। स्व० जयशंकर-प्रसादने कामायनीके 'आमुख' में उक्त दोनों मतोंमें सामञ्जस्य-सा स्थापित करते हुए लिखा था—'आदिम युगके मनुष्योंके प्रत्येक दलने ज्ञानोन्मेषके अरुणोदयमें जो भावपूर्ण इतिवृत्त संगृहीत किये थे, उन्हें आज गाथा या पौराणिक उपाख्यान कहकर अलग कर दिया जाता है; क्योंकि उन चरित्रोंके साथ घटनाएँ कहीं-कहीं अतिरञ्जित-सी भी जान पड़ती हैं। तथ्य-संग्रहकारिणी हो जाती हैं, किंतु उनमें भी कुछ सत्यांश घटनासे सम्बद्ध है, ऐसा तो मानना ही पड़ेगा।

श्रद्धा, मनु और इडाका उपाख्यान ऐतिहासिक है अथवा रूपकात्मक, इस सम्बन्धमें अपना निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए प्रसादजीने लिखा था—

'यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहासमें रूपकका भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसलिये मनु, श्रद्धा और इडा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थकी भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।'

उक्त उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि, प्रसादजीका झुकाव वैदिकोंके ऐतिहासिक सम्प्रदायकी ओर होते हुए भी, वे ऐतिहासिक और नैरुक्त दोनों सम्प्रदायोंमें समन्वय-सा स्थापित करते जान पड़ते हैं।

इससे भी आगे बढ़कर महात्मा गांधीने तो गीताको भी सांकेतिक अथवा प्रतीकात्मक रूपमें ग्रहण किया था। उन्हींके शब्दोंमें 'सन् १८८८–८९ में जब गीताका प्रथम दर्शन हुआ, तभी मुझे ऐसा लगा कि यह ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है, वरन् इसमें भौतिक युद्धके वर्णनके बहाने प्रत्येक मनुष्यके हृदयके भीतर निरन्तर होते रहनेवाले द्वन्द्वयुद्धका ही वर्णन है। मानुष योद्धाओंकी रचना हृदयके अंदर होनेवाले युद्धको रोचक बनानेके लिये गढ़ी हुई कल्पना है। धर्मका और गीताका विशेष विचार करनेपर यह प्राथमिक स्फुरणा पक्की हो गयी। महाभारत पढ़नेके बाद यह विचार और भी दृढ़ हो गया। महाभारत ग्रन्थको मैं आधुनिक अर्थमें इतिहास नहीं मानता। इसके प्रबल प्रमाण आदिपर्वमें ही है। पात्रोंकी अमानुषी और अतिमानुषी उत्पत्तिका दर्शन करके व्यासभगवान्ने राजा-प्रजाके इतिहासको मिटा दिया है। उसमें वर्णित पात्र मूलमें ऐतिहासिक भले ही हों, परंतु महाभारतमें तो व्यासभगवान्ने उनका उपयोग केवल धर्मका दर्शन करानेके लिये ही किया है। महाभारतके भौतिक युद्धकी आवश्यकता सिद्ध नहीं की, उसकी निरर्थकता सिद्ध की है। विजेतासे रुदन कराया है, पश्चात्ताप कराया है और दुःखके सिवा और कुछ बाकी नहीं रखा।'

अनासक्तियोगकी प्रस्तावना

वैदिकोंके नैरुक्त सम्प्रदायसे प्रभावित होकर गांधीजीने गीता अथवा महाभारतकी उक्त सांकेतिक व्याख्या की, ऐसा कहना सत्यका अपलापमात्र होगा; किंतु इतना निस्संदेह कहा जा सकता है कि महात्माजीद्वारा दी हुई रूपकात्मक व्याख्यासे चौंकनेकी आवश्यकता नहीं। हमारे देशमें पुरा कालसे रूपकात्मक व्याख्याकी पद्धति प्रचलित रही है। इस प्रसङ्गमें यह भी उल्लेखनीय है कि गांधीजी भी महाभारतके पात्रोंकी मूल ऐतिहासिकतासे इन्कार नहीं करते। महात्माजीको भी यदि किसी सम्प्रदायमें ही अन्तर्भुक्त करना हो तो हम उन्हें वैदिकोंके नैरुक्त सम्प्रदायमें ही समाविष्ट करना चाहेंगे।

वैदिकोंके उक्त दोनों सम्प्रदायोंमेंसे कौन-सा सम्प्रदाय अधिक मान्य है, इस ऊहापोहमें यदि हम न भी पड़ें तो भी कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि मनुष्यके हृदयमें सत् और असत् प्रवृत्तियोंका द्वन्द्व निरन्तर चलता रहता है। इसे स्वीकार करनेमें किसी भी मनीषीको कोई विप्रतिपत्ति न होगी। हमारे लिये विवेच्य विषय यह है कि मनुष्य 'असत्' से अनवरत संघर्ष करता हुआ

किस प्रकार 'सत्' की ओर उन्मुख हो। इस सम्बन्धमें गीताके निम्नलिखित श्लोककी ओर मैं विद्वानोंका ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा—

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

जो मनुष्य किसी कर्मके साथ युक्त नहीं, उसकी बुद्धि काम नहीं करती। कार्लाइलने यथार्थ ही कहा था कि जिस मनुष्यको अपना काम मिल गया है, उसे और किसी वरदानकी आवश्यकता नहीं, उसका कर्मयोग ही उसके लिये विभुका सबसे बड़ा वरदान है। गोस्वामी तुलसीदासका कर्मयोग उनका रामयोग था, जन्मभर इसी रामयोगकी साधना वे करते रहे। रामके रूपमें उन्होंने जीवनके बड़े-से-बड़े सत्यकी उपलब्धि की। इसी प्रकारकी बात हम गांधीजीके लिये भी कह सकते हैं। उनका कर्मयोग उनका सत्ययोग था और इसी सत्यकी उपासना वे आजन्म करते रहे। महर्षि वाल्मीकिने 'सत्यमेवेश्वरो लोके धर्मः सत्ये सदाश्रितः' कहकर आस्था और दृढ़तापूर्वक सत्यको ही ईश्वरका रूप माना था। वर्तमान युगमें महात्मा गांधीने भी सत्यरूपी ईश्वरकी ही उपासना की थी। कहनेका तात्पर्य यह है कि जिस मनुष्यको अपने जीवनका लक्ष्य अथवा ध्येय प्राप्त हो जाता है, उसकी बुद्धि इधर-उधर भटकती नहीं। योगयुक्त व्यक्ति ही स्थितप्रज्ञकी स्थिति प्राप्त कर सकता है, अन्य कोई नहीं। जिस व्यक्तिके पास जीवनका कोई लक्ष्य नहीं, उसे लगन या धुन नहीं होती। उसके हृदयमें भावनाकी आलोकमयी ज्वाला प्रदीप्त नहीं होती। भावनाकी आधारशिलापर ही जीवनका प्रासाद नये रूपमें प्रतिष्ठित रहता है। जिसके जीवनमें लगनकी ज्वाला नहीं जलती, उसका जीवन खाकका घर है। बिना लगनके, बिना भावनाके जीवनमें शान्ति नहीं और बिना शान्तिके जीवनमें सुख कहाँ? गीताका उक्त श्लोक मेरी दृष्टिमें बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इस श्लोकमें कर्मयोग, भक्ति-योग और ज्ञानयोग—तीनोंका महत्त्व प्रतिपादित हुआ है। बुद्धि, कर्म और भावना—तीनोंका समन्वय ही शान्ति तथा सुखका सुन्दर मार्ग है। 'कामायनी' में प्रसादजीने कहा है—

ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मनकी,
एक दूसरेसे न मिल सके, यह विडम्बना है जीवनकी।

निष्कर्षमें यही कहा जायगा कि यदि कोई मनुष्य किसी लक्ष्यसे युक्त रहेगा तो उसकी बुद्धि, भावना और क्रिया—तीनों समन्वित होकर उसके व्यक्तित्वको उदात्त बनानेमें योग देती रहेंगी। 'असत्'से लोहा लेनेका एक उपाय यह है कि मनुष्य किसी ध्येयसे इस प्रकार तादात्म्य स्थापित कर ले कि उसे 'असत्-चिन्तन' का अवसर ही न मिल सके। किंतु यदि वह किसी ध्येयसे युक्त नहीं रहा तो मनुष्यके लिये पद-पदपर स्खलनका डर है। 'सत्' के साथ युक्त होनेसे व्यक्तिके अच्छे संस्कार बन जाते हैं और असत्-चिन्तनसे दुष्प्रवृत्तियाँ उसे अभिभूत कर लेती हैं। भौतिक ऐश्वर्यकी दृष्टिसे देखा जाय तो रावणके पास क्या नहीं था। किंतु संस्कृतिके अभावके कारण उसका पतन हुआ। इसीलिये वाल्मीकिकी सीताने उसकी भर्त्सना करते हुए कहा था—

इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे।
यथा हि विपरीता ते बुद्धिराचारवर्जिता॥
(सुन्दरकाण्ड)

अरे यहाँ संत क्या हैं ही नहीं अथवा संतोंके मार्गका तुम अनुसरण ही नहीं करते? तभी तो तुम्हारी विपरीत बुद्धि आचारविहीन हो गयी है। हमारे देशमें गायत्रीके मन्त्रका बड़ा महत्त्व है और इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि उसके द्वारा सद्बुद्धिकी प्रेरणा मिलती है। इसलिये हमारे जीवनमें यदि सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु है तो वह है संस्कारोंकी समष्टि, जिसे संस्कृतिका नाम दिया जाना चाहिये और संस्कृतिकी उपलब्धि बिना साधनाके सम्भव नहीं। 'सदा मद्भावभावितः' कहकर गीताकारने भी अनवरत साधनाकी ही पुष्टि की है। कबीरने भी यथार्थ ही कहा था—

सूर-घमसान है पलक दो चार का,
सती-घमसान पल एक लागे।
साध संग्राम है रैन-दिन जूझना
देह परजंतका काम भाई॥

श्रीगदाधर भट्टकी जीवन-झाँकी*

(लेखक—कु० श्रीगोकुलानन्दजी तैलंग, साहित्यरत्न)

सज्जन, सुहृद, सुसील, बचन आरज प्रतिपालै।
निर्मत्सर निहकाम कृपा-करुना कौ आलै।
अवनि भजन दृढ़ करन धरयौ बपु भक्तनि काजै।
परमधाम कौ सेतु बिदित बृंदाबन गाजै॥
भागवतसुधा बरषै बदन, काहूकौं नाहिंन दुखद।
गुननिकर 'गदाधर भट्ट' अति सब ही कौं लागै सुखद॥

—नाभाजी, भक्तमाल

इन पंक्तियोंमें गदाधर भट्टजीके जीवनकी एक झाँकी, उनकी चरित्रगत विशेषताओंकी झलक प्रस्तुत की गयी है। यह उनके अन्तः और बाह्य—दोनों पार्श्वोंका रेखाङ्कन है, हलके रंगोंमें डूबी कल्पना-तूलिकाका अस्फुट चित्रण है। हृदय वा भावपक्षका इससे परितोष हो सकता है; किंतु चिन्तनशील मानव-मन बाह्य जीवन वा कलापक्षकी बारीकियोंमें उतरकर उनके परतोंमें कुछ और अधिक पा जानेके लिये जिज्ञासु है। वह जीवनके उस तारतम्य, उतार-चढ़ाव, घटनाक्रमका विश्लेषण करना चाहता है, जिसने उसके अन्तःस्वरूपकी सृष्टि की, भक्त वा कविके रूपमें ढलनेकी पृष्ठभूमि प्रस्तुत की।

तब सहज ही हमारी विचार-सरणि उनके स्थूल ऐतिह्य जीवन-विकासकी ओर उन्मुख होती है। किसी भी व्यक्तिका मूल्याङ्कन करनेमें हमारे समक्ष अन्तस्साक्ष्य, बहिस्साक्ष्य—ये दो साधन हैं; हम इन्हींपर जा रहे हैं।

पारिवारिक परिचय

भट्टजीके पूर्वपुरुष कौन थे अथवा उनके माता-पिताके नाम क्या हैं, यह भी किसी भी स्रोतसे अज्ञात है। वे विवाहित थे, उनके संतानें थीं—यह अवश्य ज्ञात होता है। उनके दो पुत्र-रत्न (वल्लभरसिकजी और रसिकोत्तंसजी) विख्यात हैं। 'वल्लभरसिकजीकी वाणी' (एक व्रजभाषाका पद-संग्रह) प्राप्त है, जिसमें वर्षोत्सवों, नित्यविहार और रस-लीलाओंका स्फुट वर्णन है। वे भगवत्सेवापरायण और रसिक-समाज-सेवी होनेके नाते सरस आलंकारिक काव्यके विधायक हैं। इसी कोटिमें रसिकोत्तंसजी आते हैं, जिन्होंने सुन्दर भक्तिग्रन्थ 'प्रेमपत्तन'की रचना की। इससे अधिक पारिवारिक परिचयके कोई सूत्र अभीतक प्राप्त नहीं हैं। अवश्य ही इनका वंश-परम्परागत विद्वान्, काव्य-शास्त्र-मर्मज्ञ एवं ग्रन्थ-प्रणेता महापुरुषोंसे अलंकृत होगा।

दाक्षिणात्य आन्ध्र तैलंग होनेके नाते इनका मूल स्थान दक्षिणमें ही कोई ग्राम है। कौन-सा, कहाँ, यह कहा नहीं जा सकता। इनके वंशधर अद्यावधि वृन्दावनमें भट्टपरिवारके नामसे विद्यमान हैं। इस आधारपर विदित होता है कि वे पंचद्राविड-ब्राह्मणान्तर्गत वेल्लनाटीय आन्ध्र-तैलंग हैं। परम्परागत प्रकाण्ड वैदुष्य और श्रीमद्भागवतके सुमधुर प्रवचनकर्ता होनेके कारण ही वे 'भट्ट' पदसे अवबोधित होते हैं और आज भी उनका परिवार 'भट्टजी' नामसे व्रजमण्डल तथा सुदूर देशमें विख्यात है। वे वाशिष्ठ, मैत्रावरुण, कौण्डिन्य—इन त्रिप्रवरोंसे अन्वित कौण्डिन्यस् गोत्रमें उत्पन्न तैत्तिरीय आपस्तम्ब-शाखाध्यायी कृष्णयजुर्वेदीय ब्राह्मण हैं। इनकी आन्ध्रजातीय अवटंक 'करंजी' है। सम्भवतः वैदिक प्रक्रियाओंमें करञ्ज वृक्षकी शाखा आनेके कारण ये करंजी कहलाये होंगे। इनके वंशमें कुलदेवके रूपमें लक्ष्मीनारायणका अर्चन होता है। यों इनके सेव्यनिधि श्रीमदनमोहनलाल हैं, जो उनके वंशधरोंसे सेवित वृन्दावन अठखम्भा, पुराना शहरमें विराजमान हैं।

भट्टजीके प्रारम्भिक जीवनके सम्बन्धमें भी कुछ ज्ञात नहीं होता। वे आनुवंशिक संस्कारोंके वश लौकिक जीवनसे विरक्त और भगवद्भक्तिमें अनुरक्तसे प्रतीत होते हैं। गृहस्थ-स्थितिमें रहते हुए भी अनासक्तभावसे किस प्रकार वे मानवोचित कर्तव्योंका पालन करते हैं और आजीविकावश विप्रोचित वृत्तियोंमें संलग्न होकर भी अपने वास्तविक स्वरूप वा जीवनलक्ष्यके प्रति कितने जागरूक हैं, यह उनके एक पदसे विदित होता है—

कहा हम कीनों नर तन पाइ।
हरि परितोषन एकौ कबहूँ बनि आयो न उपाइ॥
हरि हरिजन आराधि न जाने, कृपन वित्त चित लाइ।
वृथा विषाद, उदर की चिंता जनमहि गयौ बिताइ॥
सिंहत्वचा कौ मढ़यौ महापसु खेत सबनि कौ खाइ।
ऐसे ही धरि वेष भक्त कौ घर-घर फिरयौ पुजाइ॥

* अप्रकाशित 'श्रीगदाधर भट्ट, सटीक काव्य-वाणी' से।

किस प्रकार 'सत्' की ओर उन्मुख हो। इस सम्बन्धमें गीताके निम्नलिखित श्लोककी ओर मैं विद्वानोंका ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा—

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

जो मनुष्य किसी कर्मके साथ युक्त नहीं, उसकी बुद्धि काम नहीं करती। कार्लाइलने यथार्थ ही कहा था कि जिस मनुष्यको अपना काम मिल गया है, उसे और किसी वरदानकी आवश्यकता नहीं, उसका कर्मयोग ही उसके लिये विभुका सबसे बड़ा वरदान है। गोस्वामी तुलसीदासका कर्मयोग उनका रामयोग था, जन्मभर इसी रामयोगकी साधना वे करते रहे। रामके रूपमें उन्होंने जीवनके बड़े-से-बड़े सत्यकी उपलब्धि की। इसी प्रकारकी बात हम गांधीजीके लिये भी कह सकते हैं। उनका कर्मयोग उनका सत्ययोग था और इसी सत्यकी उपासना वे आजन्म करते रहे। महर्षि वाल्मीकिने 'सत्यमेवेश्वरो लोके धर्मः सत्ये सदाश्रितः' कहकर आस्था और दृढ़तापूर्वक सत्यको ही ईश्वरका रूप माना था। वर्तमान युगमें महात्मा गांधीने भी सत्यरूपी ईश्वरकी ही उपासना की थी। कहनेका तात्पर्य यह है कि जिस मनुष्यको अपने जीवनका लक्ष्य अथवा ध्येय प्राप्त हो जाता है, उसकी बुद्धि इधर-उधर भटकती नहीं। योगयुक्त व्यक्ति ही स्थितप्रज्ञकी स्थिति प्राप्त कर सकता है, अन्य कोई नहीं। जिस व्यक्तिके पास जीवनका कोई लक्ष्य नहीं, उसे लगन या धुन नहीं होती। उसके हृदयमें भावनाकी आलोकमयी ज्वाला प्रदीप्त नहीं होती। भावनाकी आधारशिलापर ही जीवनका प्रासाद नये रूपमें प्रतिष्ठित रहता है। जिसके जीवनमें लगनकी ज्वाला नहीं जलती, उसका जीवन खाकका घर है। बिना लगनके, बिना भावनाके जीवनमें शान्ति नहीं और बिना शान्तिके जीवनमें सुख कहाँ? गीताका उक्त श्लोक मेरी दृष्टिमें बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इस श्लोकमें कर्मयोग, भक्ति-योग और ज्ञानयोग—तीनोंका महत्त्व प्रतिपादित हुआ है। बुद्धि, कर्म और भावना—तीनोंका समन्वय ही शान्ति तथा सुखका सुन्दर मार्ग है। 'कामायनी' में प्रसादजीने कहा है—

ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मनकी,
एक दूसरेसे न मिल सके, यह विडम्बना है जीवनकी।

निष्कर्षमें यही कहा जायगा कि यदि कोई मनुष्य किसी लक्ष्यसे युक्त रहेगा तो उसकी बुद्धि, भावना और क्रिया—तीनों समन्वित होकर उसके व्यक्तित्वको उदात्त बनानेमें योग देती रहेंगी। 'असत्'से लोहा लेनेका एक उपाय यह है कि मनुष्य किसी ध्येयसे इस प्रकार तादात्म्य स्थापित कर ले कि उसे 'असत्-चिन्तन' का अवसर ही न मिल सके। किंतु यदि वह किसी ध्येयसे युक्त नहीं रहा तो मनुष्यके लिये पद-पदपर स्खलनका डर है। 'सत्' के साथ युक्त होनेसे व्यक्तिके अच्छे संस्कार बन जाते हैं और असत्-चिन्तनसे दुष्प्रवृत्तियाँ उसे अभिभूत कर लेती हैं। भौतिक ऐश्वर्यकी दृष्टिसे देखा जाय तो रावणके पास क्या नहीं था। किंतु संस्कृतिके अभावके कारण उसका पतन हुआ। इसीलिये वाल्मीकिकी सीताने उसकी भर्त्सना करते हुए कहा था—

इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे।
यथा हि विपरीता ते बुद्धिराचारवर्जिता॥
(सुन्दरकाण्ड)

अरे यहाँ संत क्या हैं ही नहीं अथवा संतोंके मार्गका तुम अनुसरण ही नहीं करते? तभी तो तुम्हारी विपरीत बुद्धि आचारविहीन हो गयी है। हमारे देशमें गायत्रीके मन्त्रका बड़ा महत्त्व है और इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि उसके द्वारा सद्बुद्धिकी प्रेरणा मिलती है। इसलिये हमारे जीवनमें यदि सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु है तो वह है संस्कारोंकी समष्टि, जिसे संस्कृतिका नाम दिया जाना चाहिये और संस्कृतिकी उपलब्धि बिना साधनाके सम्भव नहीं। 'सदा तद्भावभावितः' कहकर गीताकारने भी अनवरत साधनाकी ही पुष्टि की है। कबीरने भी यथार्थ ही कहा था—

सूर-घमसान है पलक दो चार का,
सती-घमसान पल एक लागै।
साध संग्राम है रैन-दिन जूझना
देह परजंतका काम भाई॥

श्रीगदाधर भट्टकी जीवन-झाँकी*

(लेखक—कु० श्रीगोकुलानन्दजी तैलंग, साहित्यरत्न)

सज्जन, सुहृद, सुसील; बचन आरज प्रतिपालै ।
निर्मत्सर निहकाम कृपा-करुना कौ आलै ।
अवनि भजन दृढ़ करन धरयौ बपु भक्तनि काजै ।
परमधाम कौ सेतु बिदित बृंदाबन गाजै ॥
भागवतसुधा बरषै बदन; काहूकौं नाहिंन दुखद ।
गुननिकर 'गदाधर भट्ट' अति सब ही कौं लागै सुखद ॥

—नाभाजी, भक्तमाल

इन पंक्तियोंमें गदाधर भट्टजीके जीवनकी एक झाँकी, उनकी चरित्रगत विशेषताओंकी झलक प्रस्तुत की गयी है । यह उनके अन्तः और बाह्य—दोनों पार्श्वोंका रेखाङ्कन है, हलके रंगोंमें डूबी कल्पना-तूलिकाका अस्फुट चित्रण है । हृदय वा भावपक्षका इससे परितोष हो सकता है; किंतु चिन्तनशील मानव-मन बाह्य जीवन वा कलापक्षकी बारीकियोंमें उतरकर उनके परतोंमें कुछ और अधिक पा जानेके लिये जिज्ञासु है । वह जीवनके उस तारतम्य, उतार-चढ़ाव, घटनाक्रमका विश्लेषण करना चाहता है, जिसने उसके अन्तःस्वरूपकी सृष्टि की, भक्त वा कविके रूपमें ढलनेकी पृष्ठभूमि प्रस्तुत की ।

तब सहज ही हमारी विचार-सरणि उनके स्थूल ऐतिह्य जीवन-विकासकी ओर उन्मुख होती है । किसी भी व्यक्तिका मूल्याङ्कन करनेमें हमारे समक्ष अन्तस्साक्ष्य, बहिस्साक्ष्य—ये दो साधन हैं; हम इन्हींपर जा रहे हैं ।

पारिवारिक परिचय

भट्टजीके पूर्वपुरुष कौन थे अथवा उनके माता-पिताके नाम क्या हैं, यह भी किसी भी स्रोतसे अज्ञात है । वे विवाहित थे, उनके संतानें थीं—यह अवश्य ज्ञात होता है । उनके दो पुत्र-रत्न (वल्लभरसिकजी और रसिकोत्तंसजी) विख्यात हैं । 'वल्लभरसिकजीकी वाणी' (एक व्रजभाषाका पद-संग्रह) प्राप्त है, जिसमें वर्षोत्सवों, नित्यविहार और रस-लीलाओंका स्फुट वर्णन है । ये भगवत्सेवापरायण और रसिक-समाज-सेवी होनेके नाते सरस आलंकारिक काव्यके विधायक हैं । इसी कोटिमें रसिकोत्तंसजी आते हैं, जिन्होंने सुन्दर भक्तिग्रन्थ 'प्रेमपत्तन'की रचना की । इससे अधिक पारिवारिक परिचयके कोई सूत्र अभीतक प्राप्त नहीं हैं । अवश्य ही इनका वंश-परम्परागत विद्वान्, काव्य-शास्त्र-मर्मज्ञ एवं ग्रन्थ-प्रणेता महापुरुषोंसे अलंकृत होगा ।

दाक्षिणात्य आन्ध्र तैलंग होनेके नाते इनका मूल स्थान दक्षिणमें ही कोई ग्राम है । कौन-सा, कहाँ, यह कहा नहीं जा सकता । इनके वंशधर अद्यावधि वृन्दावनमें भट्टपरिवारके नामसे विद्यमान हैं । इस आधारपर विदित होता है कि वे पंचद्राविड-ब्राह्मणान्तर्गत वेल्लनाटीय आन्ध्र-तैलंग हैं । परम्परागत प्रकाण्ड वैदुष्य और श्रीमद्भागवतके सुमधुर प्रवचनकर्ता होनेके कारण ही वे 'भट्ट' पदसे अवबोधित होते हैं और आज भी उनका परिवार 'भट्टजी' नामसे व्रजमण्डल तथा सुदूर देशमें विख्यात है । वे वाशिष्ठ, मैत्रावरुण, कौण्डिन्य—इन त्रिप्रवरोंसे अन्वित कौण्डिन्यस् गोत्रमें उत्पन्न तैत्तिरीय आपस्तम्ब-शाखाध्यायी कृष्णयजुर्वेदीय ब्राह्मण हैं । इनकी आन्ध्रजातीय अवटंक 'करंजी' है । सम्भवतः वैदिक प्रक्रियाओंमें करञ्ज वृक्षकी शाखा आनेके कारण ये करंजी कहलाये होंगे । इनके वंशमें कुलदेवके रूपमें लक्ष्मीनारायणका अर्चन होता है । यों इनके सेव्यनिधि श्रीमदनमोहनलाल हैं, जो उनके वंशधरोंसे सेवित वृन्दावन अठखम्भा, पुराना शहरमें विराजमान हैं ।

भट्टजीके प्रारम्भिक जीवनके सम्बन्धमें भी कुछ ज्ञात नहीं होता । वे आनुवंशिक संस्कारोंके वश लौकिक जीवनसे विरक्त और भगवद्भक्तिमें अनुरक्तसे प्रतीत होते हैं । गृहस्थ-स्थितिमें रहते हुए भी अनासक्तभावसे किस प्रकार वे मानवोचित कर्तव्योंका पालन करते हैं और आजीविकावश विप्रोचित वृत्तियोंमें संलग्न होकर भी अपने वास्तविक स्वरूप वा जीवनलक्ष्यके प्रति कितने जागरूक हैं, यह उनके एक पदसे विदित होता है—

कहा हम कीनों नर तन पाइ ।
हरि परितोषन एकौ कबहूँ बनि आयो न उपाइ ॥
हरि हरिजन आराधि न जाने; कृपन वित्त चित लाइ ।
वृथा विषाद, उदर की चिंता जनमहि गयौ बिताइ ॥
सिंहत्वचा कौ मढ़यौ महापसु खेत सबनि कौ खाइ ।
ऐसे ही धरि वेष भक्त कौ घर-घर फिरयौ पुजाइ ॥

* अप्रकाशित 'श्रीगदाधर भट्ट, सटीक काव्य-वाणी' से ।

जैसे भोर चोरके आएँ इत चितवत बितताई ।
ऐसे ही गति भई 'गदाधर' प्रभु किन करहु सहाई ॥
(पद-सं० ३)

यह कविका आत्मालोचन है—अपने प्रति सच्ची ईमानदारी, सच्ची निष्ठा है । अखण्ड सच्चिदानन्दरूप हरिके रसस्वरूपसे दूर सांसारिक मृगतृष्णाओंसे उत्पन्न मिथ्या विषाद और उदरकी चिन्तासे ही समग्र जीवनको व्यतीत होते देखकर उनका हृदय कितना आकुल है ! उन्हें वित्तमें चित्त देकर कृपणताविवश हो 'उदरनिमित्तं बहुकृतवेषः' होकर भक्त-वेशका बाना रखना पड़ता है, यह उनकी दृष्टिसे आत्मवञ्चना है; फिर घर-घर जाकर व्यक्ति-पूजा कराना उनकी आत्मनिष्ठाके विरुद्ध है । पर वे विवश हैं । अब जब सारा जन्म व्यर्थ बीत जाता है, तब वे आत्म-कल्याणके लिये प्रभुसे विनय करते हैं ।

इन पंक्तियोंसे ध्वनित होता है कि भट्टजीकी पारिवारिक स्थिति आर्थिक दृष्टिसे समृद्ध नहीं है और जीविकानिर्वाहके लिये उन्हें जहाँ-तहाँ भटककर विडम्बित होना पड़ता है । इच्छाके विरुद्ध उन्हें जब-तब दम्भका भी आश्रय ग्रहण करना पड़ता है । ब्राह्मणोचित आकाशी वृत्तिके लक्ष्य वे एक प्रौढ़ वयतक बने हुए ज्ञात होते हैं । 'जैसे चोर भोर के आएँ' शब्दोंसे यह संकेत मिलता है । 'जनमहि गयो बिताइ' से भी इसकी पुष्टि होती है । यों जीवमात्रकी सामान्य स्थिति ही इससे निरूपित हुई है, तथापि कविके श्रीमद्भागवत-प्रवचनकार होनेके नाते, उनकी पौराणिक वृत्ति है और उसकी प्रायः विपन्नावस्थासे इसकी संगति बैठती है । उनकी आत्मामें एक तड़प है, पीड़ा है अपनी कृपण वृत्तिसे; इसीलिये अब वह अधिक भटकना नहीं चाहते, प्रभुकी शरण छोड़कर······

तजि तुमसे अति हितू 'गदाधर' डहकायौ बहु ठौर ।
अब जिनि होहु कबहु या कृपनहि तुम छाड़ें गति और ॥
(पद-सं० २०)

ऐसा लगता है कि भट्टजी व्रज और व्रजराजके चरणोंमें पूर्ण शरणागतिके पूर्व आत्मकल्याणके लिये विविध साधनोंके लिये प्रयासरत रहे हैं, इसीलिये तो कहते हैं···

कवन उद्यम आपुनै करि सक्यौ निजु विस्तार...
(पद-सं० २१)

ये उद्यम वे ही हो सकते हैं, जिनके बिना भी, भक्ति-परवश होकर अथवा उन्हें आर्तभावसे पुकारनेपर हरि जीवको प्रबल पातकोंके होते हुए भी अपनाकर अभयदान देते हैं—

···ग्यान ध्यान जप तप तीरथ व्रत जोग जाग बिनु संजम···
(पद-सं० २३)

इसीलिये अपनी भक्ति-विमुख साधनाओंसे विरत होकर हरिनामका आश्रय लेनेके लिये अपने मनको उद्बोधित कर रहे हैं। अपनी विविध उपदेशक वृत्तिपर भी उनके कठोर आत्म-भर्त्सनाके शब्द देखिये—

···पर अपबाद स्वाद जिय राच्यौ, बृथा करत बकवाद घनेरौ···
(पद-सं० २२)

व्रजसे सम्बन्ध

जो भी हो, वृन्दावन आनेके पूर्व ज्ञानकर्म आदि उपासनाओंसे वे आत्मशान्ति ढूँढ़ रहे होंगे; किंतु किन्हीं पूर्वसंचित संस्कारों वा पुण्यके बलपर हरिकी ही किसी सुन्दर अन्तःप्रेरणासे उनका चित्त 'श्यामरंग' की ओर आकर्षित हुआ । भक्तिका बीज, कौन जानता था कि, उनको इतने सुन्दर सरस फलोंको देनेके लिये अङ्कुरित, पल्लवित और पुष्पित, फलित होगा एक मधुर काव्य-कल्पवृक्षके रूपमें । भट्टजीका गोपीहृदय स्वप्न-दृष्ट श्याम-सुन्दरकी रूप-माधुरीमें अटक गया । गोचारणविहारी कन्हैया भी तो ऐसी ही मोहिनी डालकर आसक्त कर लेता है। उन्होंने सुन रखा था, उनकी यह हिलग काव्य-वाणीमें उतरी । वे रूपमुग्ध, रसमुग्ध हो गा उठे—

स्याम रंग रँगी ।
देखि बिकाइ गई वह मूरति, सूरति माँहि पगी ॥
संग हुतौ सपुने अपुने पुनि सोइ रही रस मोइ ।
जागेहुँ आगें दृष्टि परै लखि नैकु न न्यारौ होइ ॥
एकजु मेरे नैननि में निसि द्यौस रह्यौ करि भौन ।
गाइ चरावत जात सुन्यौ सखि सो धौं कन्हैया कौन ॥
कासो कहौं, कौन पतियावै, कौन करै पचि बादु ।
कैसे कै कहि जात गदाधर गूँगे कौ गुड़ स्वादु ॥
(पद-संख्या १)

अनुपम श्यामरूपको आँखोंमें भरकर भक्त कविका हृदय रस-विभोर हो उठा । रस-पगे, रँगमगे, भावभरित पदकी पंक्तियाँ भावुक संतोंके मधुर कण्ठ-स्वरमें जाकर रम गयीं । संयोगवश वाणी-वीणाके तारोंको निनादित करती हुई

स्पन्दित साधु-कण्ठोंके माध्यमसे, वे वृन्दावनकी किसी निकुञ्ज-लता-वल्लरिकी माधुरीमें विलसे जीवगोस्वामिपादके कानोंमें प्रतिध्वनित हुईं। अपने हृदयकी रसानुभूतिमें तादात्म्य पाकर वे भाव-विह्वल हो उठे। सुदूर दक्षिणमें रमे, किंतु 'श्याम-रसमें' डूबे, गदाधर भट्टजीकी आसक्ति, भाव-मुग्धताकी इस गहराईपर उन्हें विस्मय हुआ। एक भावुक हृदयको वृन्दावनके माधुर्यकी ओर आकर्षित करने और उससे आत्मीयता जोड़नेके लिये एक पत्र उन्होंने भट्टजीको लिखा—

अनाराध्य राधापदाम्भोजरेणु-
मनाश्रित्य वृन्दाटवीं तत्पदाङ्काम्।
असम्भाष्य तद्भावगम्भीरचित्तान्
कुतः श्यामसिन्धौ रसस्यावगाहः॥

जिसने श्रीराधिकाकी चरण-कमल-रजकी आराधना नहीं की तथा श्रीराधा-चरण-कमलाङ्कित श्रीवृन्दावनका जिसने आश्रय नहीं लिया और राधा-भाव-रस जाननेवाले रसिकोंका सङ्ग नहीं किया, वह कैसे श्याम-रस-रूप-सागरमें गोता लगा सकता है?

पत्र लेकर दो साधु वृन्दावनसे दक्षिणको चल पड़ते हैं। मानो आज एक भक्ति-भावकी लड़ीमें उत्तर और दक्षिणको अनुप्राणित किया जा रहा है। मानवकृत वा अप्राकृतिकरूपसे मान्य मर्यादाओं, भौगोलिक परिवेष्टनोंमें बँधी सीमाओंको एक भक्ति-रस-धारासे आप्लावितकर उनमें एकात्मभाव, एकरूप लाया जा रहा है। अपने निवास-पुरके एक कूपके समीप रूप-रसमें तन्मय बैठे भट्टजीका परिचय पाकर साधुओंद्वारा उन्हें पत्र दिये जानेपर उनकी क्या भावावेशकी दशा होती है, नाभाजीकृत 'भक्तमाल' के टीकाकार प्रियादासजीके शब्दोंमें देखिये—

'स्यामरंग रँगी' पद सुनि कै गुसाँई जीव
पत्र दै पठाए उभै साधु बेगि धाए हैं।
रैनी बिन रंग कैसैं चढ़यौ, अति सोच बढ़यौ,
कागदके प्रेम मढ़यौ तहाँ लैकैं आए हैं॥
पुर ढिंग कूप, तहाँ बैठे रस-रूप लगे,
पूछिवे कौं तिनही सौं नाम लै बताए हैं।
रहौ कौन ठौर ? सिरमौर बृंदाबनधाम,
नाम सुनि मूर्च्छा है कैं गिरें प्रान पाए हैं॥
काहू कही, भट्ट गदाधरजी एही जानौ,
मानों उहि पाती चाह फेरि कै जिवाए हैं।
दीयौ पत्र हाथ, लायौ सीस सौं लगाइ चाइ,
बाँचत ही चले बेगि बृंदावन आए हैं॥
मिले श्रीगुसाइजी सौं, आँख भरि आई नीर,
सुधि ना सरीर धीर धारि वहाँ गाए हैं।
पढ़ै सब ग्रंथ नाना, कृष्णसंग कथा रँग,
रसकी उमंग अंग-अंग भाव छाए हैं॥

व्रज-वृन्दावनके माधुर्यके प्रति उनके हृदयका आकर्षण—उनकी विरहासक्ति कितनी तीव्र है, इस विवरणसे विदित होता है। वे तत्क्षण वृन्दावन प्रस्थान करते हैं और जीवगोस्वामिपादसे मिलन होनेपर उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुकी धारा प्रवाहित होने लगती है। भावाधीर और आत्मविस्मृत अवस्थामें व्रज पाकर गद्गद हो जाना उनके सरस-भावुक हृदयका द्योतन है। व्रजके माहात्म्य और रसनिधिताका ज्ञान तो उन्हें पूर्वसे था ही, बिना इसके इतनी गहन आसक्ति व्रज-व्रजराजके प्रति हो ही नहीं सकती, जैसी कि उनके 'स्याम रंग रँगी' पदसे व्यक्त होती है; साथ ही यह भी विदित होता है कि एक लंबी वयतक प्रौढावस्थातक उनका सम्पर्क व्रज तथा व्रजके भावुक संतोंके साथ सत्सङ्ग, कथाप्रवचन, भक्ति, ग्रन्थानुशीलन, श्रीमद्भागवतानुकथन आदिके रूपमें रहना चाहिये अन्यथा वृन्दावन आनेके पूर्व ही इतनी गहरी भक्ति-भावना उनके हृदयमें घर कर ही नहीं सकती। उन्होंने व्रज-भावनाका ही नहीं, व्रजसाहित्य और व्रजभाषाका भी गम्भीर अध्ययन किया जान पड़ता है। व्रज-परम्पराकी परिष्कृत काव्य-व्यञ्जनाएँ थोड़ेसे वर्षोंकी साधना नहीं, वह तो बाल्यावस्थासे ही व्यासङ्गका विषय होना चाहिये। तभी इतनी प्रौढ़, संस्कृत काव्य-शैली वे दे सके, जिसे मिश्रबन्धुओंने भी पद्माकर कोटिकी मानी है। यह समग्र साधना वा अनुशीलन, हो सकता है, साहित्य-स्वाध्याय वा सत्सङ्गसे दक्षिणमें ही प्राप्त किया हो अथवा जब-तब अस्थायीरूपसे व्रजवास करके भी। जीवगोस्वामीकी प्रेरणासे स्थायी वृन्दावनवास, दक्षिण-त्यागके अनन्तरसे तो उनकी भावनाओंसे उनके श्यामरंगमें और भी प्रगाढ़ता आ गयी और फिर उन्होंने गुसाईंजीसे मिलकर व्रजके भागवत-रसका आस्वादन किया।

शिक्षा

उनकी शिक्षाके सम्बन्धमें कोई ऐतिह्य उल्लेख भले ही प्राप्त न हो, उनके काव्यको देखकर यह अनुमान होता है कि उन्होंने व्रजसाहित्यका, विशेषकर अपने युगकी विविध

काव्य-परम्पराओंका, भक्ति और रीति-साहित्यका व्यापक अध्ययन किया होगा। अपने समयके वृन्दावनमें व्याप्त भक्ति-रस-सम्प्रदायोंका ज्ञान भी उनका कम नहीं है। गौडीय भक्ति-ग्रन्थोंका तलस्पर्शी अनुशीलन तो है ही, जब कि वे चैतन्य महाप्रभु एवं उनके अनुगत जीव, रूप, सनातन आदि षड गोस्वामियोंकी परिचर्या, निकट सेवा और सत्सङ्गमें रहे।

पढ़े सब ग्रंथ नाना संग कृष्णकथा रंग,
रसकी उमंग अंग अंग भाव छाप हैं॥

—इन पंक्तियोंसे यह प्रतिबिम्बित होता ही है। यों श्रीमद्भागवतके वे समर्थ वक्ता थे ही। श्रीमद्भागवत-से रस-ग्रन्थका मर्म-ग्रहण कुछ काल वा वर्षोंकी वस्तु नहीं, वह तो परम्परागत संस्कारों और आनुवंशिक ग्राह्य-शक्तिका सुफल एवं पूर्व पुण्योंका प्रतिफल है। फिर श्रीमद्भागवतकी पूर्वापर-संगति भी सम्बन्धित, आनुषङ्गिक शास्त्रालोचन बिना नहीं हो सकती। वे सामान्य 'कथाभट्ट' थे ही नहीं। भक्ति-सम्प्रदायोंके सुगढ़ केन्द्रस्थल वृन्दावनमें लोकप्रिय वक्ताके रूपमें कोई टक्करका व्यक्ति ही टिक सकता है। इसके अतिरिक्त उनकी बहुमुखी प्रतिभा थी, वे बहुश्रुत और बहुसंसर्गी थे। अतः उनका व्यावहारिक, सामाजिक, नैतिक ज्ञान भी विशाल था। संस्कृत वृत्तोंमें संस्कृत-कोमल-कान्त-पदावलिमें प्रासादिक रचनाएँ भी उनके संस्कृत-ज्ञान-की गुरुताका भी अभिसूचन करती हैं, जिसमें काव्य, साहित्य, दर्शन, नीति आदि बहुविध ज्ञानका समावेश है।

भट्टजी बाल्यावस्थासे ही नम्रता, दया, दाक्षिण्य, विवेक आदि सद्गुणोंकी मूर्ति थे। कण्ठकी मधुरता उनके लिये दैवी देन थी। फिर हृदयकी सरसता मिलकर उस कण्ठ-माधुरीको और भी परिवर्द्धित कर देती थी। वे स्वयं भगवत्कथामृतरूपी मेघके समक्ष चातककी-सी निष्ठा लेकर रस-लालायित रहते थे। श्रोताओंकी तो बात ही क्या थी! वे तो उनकी कथाकी ख्यातिको सुनकर सुदूर देशोंसे दौड़े चले आते थे। व्रज छोड़कर ये तो एक क्षण भी बाहर नहीं जाते थे। भगवल्लीला, रूप-माधुरी और व्रज-महिमाको लेकर अपने प्रवचनमें ऐसी रस-वर्षा करते थे, जिससे श्रोताओंके तन-मन प्रेम-रसमें डूबकर आप्यायित हो जाते थे। भक्त-मालका उपरिलिखित छप्पय उनके जीवनकी एक सुन्दर झाँकी दे रहा है।

दीक्षा

जीवगोस्वामीकी प्रेरणा पाकर भट्टजीने स्थायी व्रजवास करते हुए वृन्दावनमें श्रीमद्भागवत-प्रवचनके प्रसङ्गसे महाप्रभुके मुख्य अनुगामी षड् गोस्वामियोंमेंसे श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामीकी परम्परा स्वीकार की। उनसे श्रीराधाकृष्ण-मिलित विग्रह श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुप्रवर्तित गौडेश्वर वा गौडिया सम्प्रदायकी दीक्षा ग्रहण की गोपालमन्त्रके रूपमें और श्रीगोविन्ददेवकी इष्ट-साधना—उपासना प्रारम्भ की, जैसा कि उनके काव्यसे व्यञ्जित होता है।

नमो नमो जय श्रीगोबिंद।
आनँदमय व्रज सरस सरोवर प्रगटित बिमल नील अरबिंद।
(प०-सं० ५)

श्रीगोबिंदपदारबिंदसीमा सिर नाऊँ।
श्रीबृंदाबनबिपिनमौलिवैभव कछु गाऊँ॥ (पद-सं० ६)
श्रीबृंदाबनजोगपीठ गोबिंदनिवासा।
तहाँ श्रीगदाधरसरन चरनसेवाकी आसा॥
श्रीगोबिंदपदपल्लव सिर पर बिराजमान।
कैसे कहि आवै या सुख कौ परिमान॥ (पद-सं० १३)
जय महाराज ब्रजराज कुल तिलक।
गोबिंद गोपीजनानंद राधारमन।
(पद-सं० १२)

—इन कतिपय उद्धरणोंसे गोविन्दपदारविन्दमें उनकी कितनी गहन निष्ठा व्यक्त होती है! इनकी सारी काव्य-साधना गोविन्ददेवके मन्दिरमें ही बैठकर हुई। प्रभुके संनिधानका सुन्दर प्रेरक वातावरण और कौन-सा हो सकता है? हृदयमें लीलानुस्मरण, मनन, चिन्तन, कथन करते जाते हैं और उन्हीं भावनाओंको काव्यकी रेखाओंमें गुम्फित। जीवनकी साधना, आराधना ही उनके काव्यका विषय बन गयी। उनका लीला-काव्य उनके जीवन-काव्यका ही प्रतिरूप था, भक्त और कविरूपमें एकरसता तो थी ही।

ग्रन्थ-रचना

भट्टजीकी काव्य-सर्जना केवल कवि होनेके नाते तो थी ही नहीं, इसीलिये कोई ग्रन्थ-रचनाके लक्ष्यसे उन्होंने नहीं लिखा। जब-जब लीलावेशसे उनका हृदय आविष्ट हुआ, तन्मयतामें डूबकर उन्होंने पद-रचना की। इसीलिये फुटकर पद उनके उपलब्ध होते हैं, जिन्हें भक्तोंने पीछे जाकर 'वाणी' के रूपमें संकलित वा लिपिबद्ध कर लिया। किन्हीं

भावुक संतोंने उस संग्रहको 'मोहिनी वाणी' भी नाम दिया है। भट्टजीके यावन्मात्र पदोंका संग्रह जो उपलब्ध होता है, वह संख्यामें ८६ है। सम्भवतः उस समय व्रज-साहित्यमें 'वाणी' वा काव्यके रूपमें तथा गद्यात्मक भक्तोंकी 'वार्ता'के रूपमें जो 'चौरासी'की परम्परा चल रही थी, कवि उसीसे प्रभावित हुआ हो और कुछ न्यूनाधिक पदोंको मिलाकर यह संख्या आ पहुँची हो। 'हित चौरासी' और 'चौरासी वैष्णवनकी वार्ता' इस प्रकारके साहित्य हैं, आध्यात्मिक दृष्टिसे भी इस ८४की संगति दार्शनिक विद्वानोंने बैठायी है, 'जिसकी प्रेरणा साहित्य और व्यवहारमें तथा भक्ति-सम्प्रदायोंमें अविकल ग्रहण कर ली गयी है। इन पदोंमेंसे चार पदोंमें 'मुकुन्द', 'मुकुन्दचन्द, कल्यानमुकुन्द वा मुकुन्दकल्यान' छाप है। शेषमें 'गदाधर' है, प्रभु, दास, विप्र, भट्टके साथ।

श्रीमद्भागवत-कथा-शैली

यह काव्य-रचना भट्टजी विशुद्ध भक्त-रूपमें 'सारंसारं समुद्धृतम्'के संदर्भमें, 'मधुकरी' वृत्ति लेकर, श्रीमद्भागवत-के आलोकमें करते रहे। वे भागवत-तत्त्वका, पुष्टि-पथका विशद रूपसे चिन्तन, रसास्वाद और रसप्रदान करते रहे। 'मधुकरी' तो गौडीय संतोंकी आजीविका है। व्रजवासियोंके घरोंसे अप्रेरित रोटीका एक-एक टूक माँगकर, उसीमें भगवत्प्रसादकी भावना कर, केवल भगवत्सेवा-स्मरण व्रजवास दर्शन-लीलानुकथन मात्रके लिये पेट भर लेना उनकी दैनिक चर्या है, उनके अपरिग्रही जीवनकी भाव-साधना है। भट्टजीके शब्दोंमें वह तो मानो 'कृष्ण-अनुराग मकरंद-की मधुकरी' पद-सं० १० का साकार रूप है, जिसे वे 'गोपीभाव' वा 'राधा-तत्त्व-रूप'से काव्यमें निरूपित करते हैं।

भट्टजीने श्रीमद्भागवतको काव्य-भक्तिका आधार वा रस-श्रोतरूपमें ग्रहण करते हुए भी, वर्ण्य विषयके लिये हृदय-रूप वा रस-धर्मरूप दशमस्कन्ध-पूर्वार्द्धकी उन्हीं व्रजलीलाओं-को चुना है, जिनमें मानव-मन सहजमें रम सके। भक्ति, विनय और माहात्म्यका पुट देकर स्वरूपसौन्दर्य, व्रजलीलाओं, रास-विलास, ऋतुलीलाओं आदिका रसायन जो उन्होंने सिद्ध किया है, वह समग्र भक्ति-परम्पराओंको अमोल सिद्ध हुआ है। उनकी वर्णन-चातुरी कुछ ऐसी विलक्षण है कि उस थोड़े-से काव्यमें ही समस्त भगवल्लीलाओंके संकेत सरल स्निग्ध रूपमें आ गये हैं। किसी भी विषयका अनावश्यक विस्तार नहीं किया है और किसी विषयको, जो उनकी भावनाको पोषण—संवर्द्धन देनेवाला हो, वे छोड़ भी नहीं गये हैं। वे तो 'सारङ्ग इव सारभुक्' ठहरे। श्रीमद्भागवतका सम्पूर्ण रसास्वाद इने-गिने चौरासी पदोंमें बाँधना बहुत बड़ी रस-मर्मज्ञता है। उनकी पद-योजना, शब्द-माधुरी इतनी ललित है, जो एक रस-लीलाओंके प्रवचनकारके लिये आवश्यक है। उसीके कुछ छींटे सम्भवतः भट्टपरिवारकी कथा-शैलीमें अविकल उतर आये हैं। काव्य-कथा-शैलीमें इतना साम्य किसी अज्ञात शक्तिकी ही प्रेरणा है। एक उदाहरण—

अलकनि की झलकनि लखि पलकनि गति भूलि जाति

(पद-सं० १९)

अलकनि की झलकन पै, कपोलन पै पलकन पै गोरज छाय रही है

(श्रीनित्यानन्द भट्ट, वृन्दावनकृत अष्टकालीन नित्यलीला)

इस प्रकार भागवती कथाके अपने किसी पारम्परिक संस्कारको व्रज-रसमें पागकर उन्होंने विकसित किया और अग्रिम परम्पराओंके लिये भट्टपरिवार और व्रज-भक्ति-पथ दोनोंको एक अनूठी वस्तु प्रदान की। उन्होंने भगवत्कथाको व्यासादि-कथित वेद-ग्रन्थ-मन्थन-सार-रूप 'अघ संहारिनि, कलि-काल-तारिनि' और—

मंगलविधायिनी प्रेमरसदायिनी भक्ति अनपायिनी होइ जिय सर्वथा

(पद-सं० २४)

—माना है। उसका यह प्रेम-रस-दायित्व और भक्तिमाधुर्य ही जब उनके कोमल कण्ठस्वरसे मिलता था, तो वह श्रोताओंके हृदयपर और ही चमत्कार दिखलाता था, जिससे विषय-विकारकी निवृत्तिपूर्वक कितने ही कुटिल, दम्भी, छली व्यक्तियोंका अन्तः निर्विकार, पवित्र और भक्तिभावसे विनत हो जाता था।

विशिष्ट घटनाएँ—

उनके जीवनकी कुछ ऐसी विशिष्ट घटनाओंका उल्लेख भक्तमालके टीकाकार प्रियादासजीने कुछ कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

नाम हौ कल्यानसिंह जाति रजपूत पूत,
बैठ्यौ आइ कथा सों अमृत रंग लाग्यौ है।
निपट बिकट बाँस और हवा प्रकास गाँव
हास-परिहास तज्यौ तीया दुख पायौ है॥
बानी भट्ट संग सों अनंग बास दूरि भई,
करौ हैकै नई आनि हीये काम जाग्यौ है

माँगति फिरति हुती जुवती और गर्भवती,
कह्यौ लै रुपैया बास नैकु कह्यौ राख्यौ है ॥
गदाधर भट्टजी की कथामें प्रकास कहौ
अहो कृपा करौ अब मेरी सुधि लीजिये ।
दई लौंडी संग लाभ गंग चित्त भंग कीये,
दीये लै बताइ अब मेरो कह्यौ कीजिये ॥
बोले आप बैठिये जू जापै नित करो हिये,
पाप नहीं गयौ मेरौ दरसन दीजिये ।
स्रोता दुःख पाइ भावै झूठी यह मार नासै,
साँची कहि राखी सुनि तन मन छीजिये ॥
फाटि जाइ भूमि तौ समाइ जाऊँ स्रोता कहैं,
बहै दृग नीर है अधीर सुधि आई है ।
राधिकावल्लभदास प्रकट प्रकास भास,
भयौ दुखरासि तब सुनि सो बुलाई है ॥
साँची कहि दीजै नहीं अभी जीव लीजै डारि,
सबै कहि दई सुख लियौ संज्ञा भाई है ।
काढि तरवार तीया मारिबे कल्यान गयौ,
दयौ सो प्रबोध हमै करी दया नाई है ॥
× × ×
रहे काहू देसमें महंत आयौ कथा माँहि,
आगे लै गए देखि सबै साधु भीजे हैं ।
भरे अस्रुपात सोच होत क्यों न स्रोताहिं,
पर्‌यौ कर लै उपाय दै लगाइ मिर्च खीजे हैं ॥
संत एक जानि कै बताइ दई भट्टजू कौ
गए उप सबै जब मिलौ अति रीझे हैं ।
ऐसी चाह होइ मेरे रोइकै पुकार चली,
जलधार नयन प्रेम आइ भीजे हैं ॥
× × ×
आयौ एक चोर घर संपति बटोरि गाँठ,
बाँधी लै मरोरि क्योंहू उठै नहिं भारी है ।
आइकै उठाइ दई देखौ इनि रीति नई
पूछौ ना प्रीति भई भलौ मैं बिचारी है ॥
बोले आप लै पधारौ होत ही सवारौ आवै,
और दसगुनी मेरे तेरे यही ज्यारी है ।
प्रानानि कै आगै धरौं आनि कै उपाइ करौं,
रहे समुझाइ भयौ सिस्य चोरी टारी है ॥
× × ×

प्रभु की टहल निज करन करत आप
भक्ति कौ प्रताप जानै भागवत गाई है ।
देत है तै चौका कोउ सिस्य वो हौ भेंट लायौ,
दूरि हौ तैं दास देखि आयौ यौं जनाई है ॥
धोयौ हाथ बैठो आइ सुनिके रिसाइ उठे,
सेवा ही में बनाइ याकौं खीजि समुझाई है ।
हियै हित रास जग आस कौ बिनास कियौ,
पीयौ प्रेम रस ताकी आस लै दिखाई है ॥

कितना साधु-व्यक्तित्व है ! जिसका आध्यात्मिक वा मनोवैज्ञानिक प्रभाव स्वतः एक दानवको मानव बना देता है । भट्टजीके प्रति जनसाधारणमें कितनी श्रद्धा थी, उनका हृदय कितना वीतराग, करुणा और कृपासे आपूरित था, सेवा-भक्तिमें उनका चित्त कितना निरत था और उनमें कितनी सहिष्णुता एवं शान्ति थी—इन घटनाओंसे विदित होता है । इन्हीं सब सद्गुणोंके कारण व्रजके सभी भक्ति-सम्प्रदायोंमें उन्हें समादर प्राप्त था । उन्हें सिद्ध आचार्य-कोटिमें मानकर माध्व-गौडेश्वर सम्प्रदायमें तो महिम-स्थान दिया ही गया है, उनका भी अपना शिष्य-सेवकाना है और वे आचार्य-पण्डितरूपमें आदृत हैं ।

इस प्रकार भट्टजी श्रीगोविन्दपदारविन्दमें अनुरक्त हो, सम्पूर्ण जीवनमें भक्ति और काव्य-साधनामें निरत रहे । भौतिक यशोलिप्सा, अर्थ-कामना और व्यक्ति-पूजा-माहात्म्यसे दूर, हरिचिन्तन ही उनका एकमात्र लक्ष्य था । अन्य सामान्य कवि वा विद्वानोंकी भाँति उन्होंने न तो काव्यमें अपने चरित्रके सम्बन्धमें कोई संकेत दिया, जिससे अन्तःसाक्ष्यकी सामग्री मिल सके, न कोई ग्रन्थ-रचना ही करके अपनेको अमर करनेका प्रयास किया । तथापि उन्होंने जो कुछ भाव-भीने क्षणोंमें दिया, उसे उनके भक्तोंने, रस-मर्मज्ञ भावुकोंने उनकी अमृत-वाणीके रूपमें आत्मसुखके लिये संग्रह कर लिया । उनकी अक्षय कीर्ति और भावी पीढ़ियोंकी रस-वृत्तिको पोषण देनेके लिये उतना ही पर्याप्त है । उनका काव्य, उनकी भावनाएँ ही उनकी जीवन-गाथा हैं, जीवन-दर्शन है ।

तथागतकी आस्तिकता

(लेखक—प्रो० श्रीदेवदत्तजी भट्टि)

बुद्धधर्मके प्रवर्त्तक तथागत विश्वकी उन कतिपय विभूतियोंमेंसे हैं, जिनके विषयमें हम कह सकते हैं कि उन्होंने विश्वकी विचारधाराको एक समयोचित एवं आवश्यक रुख दिया। जगत्‌के बौद्धिक तथा दार्शनिक इतिहासको, अपनी अलौकिक मेधाके पुनीत वर्णोंसे अङ्कित अमर पृष्ठ प्रदान किये।

तथागतकी आस्तिकताके विषयमें निर्णय करनेसे पूर्व हमें आजसे अढ़ाई सहस्राब्दी पहलेके समय और परिस्थितियोंका विहंगावलोकन करना नितान्त उपयुक्त होगा।

जैसे कि इतिहासके तात्कालिक इतिवृत्तके अधूरे पन्ने हमें बोध कराते हैं कि तथागत उस समाजकी रूढ़ियोंकी प्रतिक्रिया थे, जिसने हमारे अन्तःकरणसे उदात्त आचारोंके निदिध्यासन एवं आचरणको शिथिल करके बाह्य क्रिया-कलापोंकी परायणतामें आस्था रखनेकी प्रेरणा दी। ब्रह्मके नामपर यत्किञ्चित् इष्टानिष्ट किया जाने लगा। परम्परामें अन्ध-विश्वास होनेके कारण हमारा तर्क कुण्ठित होने लगा। समाजके खोखले कलेवरमें अलौकिकता, कल्पना और दिव्यता ऐसे घर कर गयी थी कि जिसके समक्ष संदेह करनेकी हमारी क्षमता शून्यप्राय थी।

प्रायः ऐसी स्थितिमें तथागतका अवतरण हुआ था। उनका यह अवतरण प्रकृतिके उस नियमके अनुकूल था जिसके अन्तर्गत प्रत्येक क्रियाकी पराकाष्ठापर प्रतिक्रियाका जन्म हुआ करता है।

गौतमकी जिज्ञासा एवं अध्यवसायने उन्हें 'बुद्ध' बनाया। 'बुद्ध' बनकर उन्होंने संसारकी पीड़ाका निराकरण करना चाहा और निराकरण उन्होंने ढूँढ़ा—आत्मशुद्धिमें आत्मसंयममें, आत्मदर्शनमें। उन्होंने देखा कि लोक शान्ति पानेका इच्छुक तो है, पर शान्ति ढूँढ़ रहा है किसी औरमें, अपनेमें नहीं। यदि वह अपनेमें शान्तिको उपलब्ध करनेका प्रयत्न करे तो सफलता मिल सकती है। बस, इसी एक मूल उद्‌देश्यको लेकर वे चले। उन्हें ऐसी आवश्यकता अनुभूत नहीं हुई जिससे प्रेरित होकर वे ब्रह्मके विषयमें अधिक कहते। लेकिन जब-जब उन्हें आवश्यकता पड़ी तो अपनेके प्रसिद्ध देवताओंका स्मरण करना वे नहीं भूले। देवताओंकी केवल सत्ता ही उन्हें मान्य नहीं थी; बल्कि देवी-देवताओंकी शक्तियों, कृत्यों एवं विशेषताओंको भी उन्होंने स्वीकार किया था। हाँ, उन्होंने ऐसे ब्रह्मको स्वीकार नहीं किया जो हमारे सुखों और दुःखोंका कारण है, जो कि हमारे प्रत्येक कार्यमें हस्तक्षेप करता है और पुण्य-पापोंका उत्तरदायी है; क्योंकि ब्रह्मके लिये ऐसी धारणा बनाना किसी भी तर्कवान् व्यक्तिके लिये तर्कसंगत नहीं जँचता। उनका ऐसा कहना कोई ब्रह्मविरोधी नहीं था; क्योंकि ऐसी बातें तो हमारे पुराणोंमें भी स्थान-स्थानपर प्रतिपादित हैं—

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
स्वयं कृतं स्वेन फलेन युज्यते शरीर हे निस्तर यत्त्वया कृतम्॥

(गरुडपुराण)

वे ऐसे देवको स्वीकार करनेके पक्षमें भी नहीं थे, जो गोमेध, अश्वमेध, नरमेध आदि यज्ञ-यागोंमें पशुबलि या हिंसाकी आज्ञा देता है।

तिविज्जासुतके अन्तिम भागमें तथागतने कहा है कि ब्रह्मविहारके अभ्यासके माध्यमसे हम उस ब्रह्मका सांनिध्य प्राप्त कर सकते हैं, जो एक मौलिक शक्ति है और समस्त जंगम-स्थावरका आधार है।

इसी प्रकार धम्मपदमें एक स्थलपर भगवान् बुद्ध कहते हैं कि 'हे घर बनानेवाले, तुम्हें मैंने देख लिया है, अब तुम पुनः घर नहीं बना सकोगे'।

गहकारक दिट्ठोऽसि पुना गेहं न काहसि,
सभा ते फासुका भग्गा, गहं कुटं विसंखितम्,
विसंखारगतं चित्तं तन्हानं खयमज्झगा॥

(धम्मपद (जरावग्गो) १५४)

जरावर्गके इस पद्यमें तथागतने उस ब्रह्मकी ओर संकेत किया है जो इस पिण्डका निर्माण करता है और जन्म-मरणके पाशमें फाँसता है तथा जिसे देख लेनेपर मुक्ति मिलती है—निर्वाण प्राप्त होता है।

ब्रह्मके दर्शन करनेपर भी महात्मा बुद्धके इस सत्यको

भिक्षुओं, भदन्तोंतक प्रकाशित न करनेका कारण निम्नलिखित घटनासे स्पष्ट होता है—एक बारकी बात है कि तथागत कौशाम्बीमें एक शिंशपा तरुके तले बैठे थे। उन्होंने शिंशपाके कुछ पत्ते अपने हाथमें लिये और कहा 'भिक्षुओ ! मेरे हाथमें अधिक पत्ते हैं या पेड़पर ?' भिक्षुओंने उत्तर दिया— 'भगवन् ! पेड़पर।' तथागतने फिर कहा, 'भिक्षुओ ! ऐसे ही उस ज्ञानसे, जो मैंने तुम्हें दिया है, वह ज्ञान, जो मैंने तुम्हें नहीं दिया अधिक है।' तदुपरान्त उन्होंने कहा है 'कि मैंने वह ज्ञान तुम्हें इसलिये नहीं दिया, क्योंकि वह तुम्हारे कामका नहीं है।' (संयुत्तनिकाय)।

इस उदाहरणसे स्पष्ट है कि भगवान् बुद्धके पास उपदिष्टसे कहीं अधिक अनुपदिष्ट रक्खा हुआ था जिसको उन्होंने कभी अपने उपदेशोंमें पुष्कल स्थान नहीं दिया। इसी अनुपदिष्टमें उनकी आस्तिकता निहित थी। समयकी माँग आस्तिकताके प्रचार करनेकी नहीं थी। समयकी माँग अपने आपका विश्लेषण करनेकी थी। संतप्त संसारको शान्ति प्राप्त करानेकी थी। ब्रह्मग्रह जनोंको आत्मग्रह बनानेकी थी।

एवमेव एक और उदाहरण देकर उन्होंने प्रत्येक प्रश्नको समाहित न करनेका आग्रह भी अपने शिष्योंसे किया है। उन्होंने कहा है—'यदि किसी एक व्यक्तिके विषाक्त बाण लगे और वह व्यक्ति उस बाणको निकालनेसे पहले यह पूछे कि बाण मारनेवाला कौन है ? कहाँ है ? कैसा है ? क्यों है ? तो वह अपने प्रश्नोंका उत्तर पानेसे पहले ही मर जायगा। इसी प्रकार जो शिष्य सभी प्रश्नोंका उत्तर पा लेनेकी चेष्टा करते हैं वे अन्तिम तथ्य (ब्रह्म) को जान लेनेसे पूर्व ही मर जायँगे। (' मज्झिमनिकाय)।

तथागतने ब्रह्मकी सत्ताको धर्म (धम्म) के रूपमें भी कई स्थलोंपर स्वीकार किया है (अंगुत्तर १-१४९)। मुक्त जीवकी स्थिति बताते हुए वे कहते हैं कि 'निर्वाणप्राप्त जीव शान्त तथा निश्चल होता है और वह आत्माके साथ चरम सुखकी अनुभूति करता है जो कि ब्रह्म (ब्रह्मभूत) बन गयी होती है (मज्झिमनिकाय १-३४४, २-१५९, अंगुत्तर २-२११)।

कई बार तो भगवान् बुद्ध उत्तमावस्थाके लिये 'ब्रह्मप्राप्ति' शब्दका सीधा प्रयोग करते हैं (मज्झिमनिकाय १-३०४)।

इसी ब्रह्मको उन्होंने गृहकारक (गहकारक) कहा है; क्योंकि ब्रह्म ही इस शरीररूपी गृहका निर्माता है। एक बार और भी तथागतने इसी शब्दसे ब्रह्मकी ओर इंगित किया है और कहा है कि मैं नाना योनियोंमें गृहकारकको ढूँढ़ता फिरा हूँ—

अनेक-जाति संसारं सन्धाविस्समनिब्बिसम्।
गहकारकं गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनम्॥

(धम्मपद (जरावग्गो) १५३)

इन उद्धरणोंके अतिरिक्त देवताओंके उद्धरण भी तथागतने यत्र-तत्र धम्मपदमें अनेक बार प्रस्तुत किये हैं।

देवताओंके राजा देवराज इन्द्रका उदाहरण देकर तथागत कहते हैं कि इन्द्र अप्रमादसे ही देवताओंमें श्रेष्ठतम माना जाता है, अतः अप्रमादकी प्रशंसा करनी चाहिये एवं प्रमादकी गर्हा—

अप्पमादेन मघवा देवानं सेट्ठ तमं गतो।
अप्पमादं पसंसन्ति पमादो गरहितो सदा॥

(धम्मपद (अप्पमादवग्गो) ३०)

इसके अतिरिक्त धम्मपदमें यम, मार, अन्तक, गन्धर्व, ब्रह्मा, नरक और स्वर्ग इत्यादि हिंदुमान्यताओंका क्रमशः पुप्फवग्गो—१, ३, ५, सहस्सवग्गो—६, कोधवग्गो—९, मलवग्गो—१, निरयवग्गो—६ में वर्णन पाया जाता है। अतः तथागतको नास्तिक कहना कदापि उचित नहीं। हाँ, यह अवितथ है कि तथागतको आत्मसाक्षात्कारके लिये तथा निर्वाणप्राप्तिके लिये ब्रह्मके ऊपर आश्रित रहना अपेक्षित नहीं था।

समयकी पुकारने उन्हें मानवको पीड़ाविमुक्त करानेके लिये 'स्व' का पाठ पढ़ानेको कहा। इसी स्वबोधके लिये उन्होंने अष्टाङ्गमार्ग आदि साधनोंकी शिक्षा दी।

पराजय, गुरु और युवक

(लेखक—प्रो॰ डा॰ श्रीराजेश्वरप्रसादजी चतुर्वेदी, एम्॰ए॰, पी-एच॰डी॰, डी॰ लिट्॰, साहित्यरत्न)

'शिष्यात् पुत्रात् पराजयम्' अर्थात् शिष्य और पुत्रसे पराजयकी कामना करनी चाहिये—इस वाक्यका स्पष्टीकरण करते हुए मैं विद्यार्थियोंको यह समझानेका प्रयत्न कर रहा था कि पिता और गुरुके स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण होते हैं। संसारमें केवल दो व्यक्ति ही ऐसे होते हैं जो किसीकी वृद्धि एवं उन्नतिसे संतुष्ट और प्रसन्न होते हैं। प्रत्येक गुरुकी यह इच्छा होती है कि उसके विद्यार्थी उससे अधिक विद्वान् एवं उच्च आसन ग्रहण करनेवाले बनें। प्रत्येक पिता यह चाहता है कि उसका पुत्र उससे अधिक सुखी, सम्पन्न एवं समृद्ध बने। पिता और गुरु वस्तुतः अपने पुत्र और शिष्यके व्यक्तित्वमें अपने आत्माका दर्शन करते हैं।

'ऐसा किस प्रकार सम्भव है?'—कहते हुए एक विद्यार्थीने शंका उपस्थित की। उसके नेत्रोंमें अविश्वास एवं उपेक्षाके भाव स्पष्ट प्रकट थे। बालकका अविश्वास दूर करनेके विचारसे मैंने अपने व्यक्तिगत जीवनकी एक घटनाका उल्लेख करते हुए कहा कि 'एक बार मैचमें मेरे टैनिसके गुरुने मुझसे पराजित होनेपर मेरी पीठ थपथपायी थी—अतः गुरुकी इस भावनाका मैं स्वयं प्रमाण हूँ।'

मैं समझता था कि मेरे उत्तरसे बालकका पूर्ण समाधान हो जायगा और गुरुके प्रति उसकी उपेक्षा निर्मूल हो जायगी। निरुत्तर होनेके स्थानपर उस विद्यार्थीने और भी अधिक कठोर प्रहार करते हुए प्रत्युत्तर प्रस्तुत किया—'मनमें तो जल ही रहे होंगे—ऊपरी मनसे पीठ थपथपा दी होगी।' मैं चुप हो गया।

विद्यार्थीका कथन मेरे लिये प्रायः एक पहेली ही बन गया। उसने मुझे ऊपरसे नीचेतक झकझोर डाला। मैं विश्लेषण करना चाहता था कि इस विद्यार्थीने मेरा अपमान करना चाहा था, अथवा समाजके प्रति अपना अविश्वास प्रकट किया था किंवा आर्ष-ग्रन्थकी प्रामाणिकता अस्वीकार की थी।

मैं विज्ञानकी एक कक्षाको हिंदी पढ़ा रहा था। परमाणु-शक्तिसे सम्बन्धित एवं संदर्भको मैं स्पष्ट कर रहा था। हिंदीके एक अध्यापकका यह प्रयत्न किसी सीमातक विद्यार्थियोंके लिये आश्चर्यमिश्रित मनोरञ्जनका विषय था। उनमेंसे कुछ तो सम्भवतः इसे मेरी अनधिकार चेष्टाके रूपमें देख रहे थे। एक कोनेमें बैठे हुए विद्यार्थियोंने इस विषयको लेकर आपसमें बातें करना आरम्भ कर दिया। 'डाक्टर साहब साइंस पढ़े हुए मालूम पड़ते हैं?' 'जी हाँ, बी॰ एस्-सी॰ हैं।' 'तब हिंदीके अध्यापक क्यों बने?' 'साइंस आगे चली न होगी?' 'प्रिंसिपल सिंहने इनसे कहा होगा कि आप हिंदी पढ़ाइये—आपके बिना हिंदी विभागका काम चल नहीं रहा है'—आदि।

इन बातोंको मैं सुनी-अनसुनी करके आगे बढ़ता गया। परंतु आप सहमत होंगे कि उक्त वार्तालापमें अध्यापकके प्रति उपेक्षा, अपमान, निरादर, घृणा आदिके भाव ओतप्रोत थे। ऐसी स्थितिमें अध्यापक चुप हो जानेके अतिरिक्त कर भी क्या सकता है। यह बात दूसरी है कि वह विवशतावश चुप हो अथवा अध्ययनके लिये कुछ सामग्री प्राप्त करके दार्शनिककी तरह मन-ही-मन मुस्करा दे।

उपर्युक्त दोनों घटनाएँ एक विशेष तथ्यकी ओर संकेत करती हैं। आजके नवयुवकके मनमें अपने बड़ोंके प्रति आस्थाका अभाव हो चला है तथा उदार-

मना व्यक्तिके रूपमें वह एक अध्यापककी कल्पना करनेमें असमर्थ है। उसकी दृष्टिमें आधुनिक अध्यापक एक अधकचरा, कामचलाऊ आदमी होता है। इस कारण वह यह सोच सकनेमें असमर्थ है कि एक अध्यापक अपने शिष्यको अपनी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ बनाना चाहता है। वह कदाचित् यह भी माननेको तैयार नहीं है कि आजकलके इस कामचलाऊ युगका अध्यापक एकसे अधिक विषयोंका विद्यार्थी हो सकता है। अनास्था एवं अविश्वासके अतिरिक्त उसके मनमें घृणाका अङ्कुर भी विद्यमान रहता है। वह अपने गुरुजनको आदरके स्थानपर उपेक्षा एवं निरादरकी दृष्टिसे देखनेका अभ्यस्त होता जा रहा है। इस भावकी पराकाष्ठा उस समय परिलक्षित होती है जब हमारा नवयुवक अपने माता-पिताके प्रति भी किसी प्रकारकी कृतज्ञताका अनुभव न करते हुए यह कह देता है कि 'मेरा लालन-पालन वे विवशतावश ही कर रहे हैं। संतान उनकी भोगवृत्तिका दुष्परिणाम है।'

हमारे नवयुवक-वर्गके मनमें इस प्रकारके भाव क्यों अङ्कुरित और पल्लवित होते हैं ? वे इतने अविश्वासी, अश्रद्धालु एवं अशिष्ट क्यों होते जा रहे हैं ? आदि प्रश्न हमें विचलित एवं विह्वल बना देते हैं। नवयुवकवर्गको केवल बुरा-भला कह देनेभरसे हमारा काम नहीं चलेगा। असहिष्णु बनकर हम अपना भविष्य अन्धकारमय बना लेंगे। अतः आवश्यक है कि हम शान्तचित्त होकर गम्भीरतापूर्वक स्थिति—परिस्थितिका विश्लेषण करें।

आधुनिक विज्ञानके साथ तर्क एवं विश्लेषणकी प्रकृति जाग्रत् हुई। 'अविश्वास' एवं 'संदेहशीलता' उसके आवश्यक परिणामके रूपमें समाजको प्राप्त हुए। कट्टवाद इसीका दुष्परिणाम है। इस मनोवृत्तिके फल-स्वरूप 'प्रमाण' और 'विश्वास' प्रायः समाप्त होते जा रहे हैं।

डार्विन, फ्राइड और कार्ल मार्क्सके भौतिकवादी दर्शनने आत्माको अस्वीकार करके मानवको जड और जडवादी बना दिया है। हमारा नवयुवक मानवके मनमानसमें उदात्तवृत्तिका दर्शन करना बुद्धिकी विडम्बना मान बैठा है। सम्भवतः उसके मतानुसार जीवनमें चेतना-विकास, स्नेह एवं उदारताके लिये कोई स्थान नहीं रह गया है। माता और पुत्र, पिता और पुत्री, भाई और बहिनके प्रेमको वह योनि-भावनाके पंकसे आवृत देखता है। अपने कामसे काम रखनेवाला व्यक्ति उसके मतानुसार समाजद्रोही है; क्योंकि कार्ल-मार्क्स कह गये हैं कि जिसके मुँहपर संतोषकी झलक दिखायी दे, वह 'शोषक' होनेके अतिरिक्त हो ही क्या सकता है।

जनवादी व्यक्तिगत स्वतन्त्रताने व्यक्तिको व्यक्तिवादी और उच्छृङ्खल बना दिया है। जनतन्त्रमें व्यक्तित्वको तौलनेके बजाय व्यक्तिको गिननेका चलन हुआ। फलतः व्यक्तित्वकी गुरुता और गम्भीरता विदा हो गयी।

साम्यवादने पूँजीपतिके प्रति घृणाका प्रचार किया। भरपेट रोटी खानेवाला प्रत्येक व्यक्ति घृणा एवं विद्वेष-का पात्र बन गया। इसके दुष्परिणाम तीन रूपोंमें उपलब्ध हैं—(१) यदि आपके पड़ोसियोंको यह विश्वास है कि आप भरपेट रोटी खा लेते हैं, तो आपसे अधिक बुरा व्यक्ति कोई नहीं है। (२) आप यदि बाजारमें साफ कपड़े पहनकर निकलते हैं, तो आप समस्त घृणा एवं अपमानके स्वयं-प्रमाण पात्र हैं। तथा (३) गरीबीकी ओटमें समाजके अवाञ्छनीय तत्त्वको मनमानी करनेकी छूट मिल गयी है।

इन नवीन प्रवृत्तियोंने हमें अनेक नारे प्रदान किये हैं। कोई विचार केवल इसलिये बुरा है, क्योंकि उसमें प्राचीनताकी गन्ध आती है; कोई बात केवल इसलिये निन्दनीय है, क्योंकि वह सामन्तवादी है; कोई रीति केवल इसलिये त्याज्य है, क्योंकि वह जातिवादकी देन है; कोई बात केवल इसलिये समर्थन करनेयोग्य है, क्योंकि उसका कहनेवाला एक अशिक्षित भिखारी अथवा रिक्शाचालक है और कोई संस्था केवल इसलिये असामाजिक है, क्योंकि उसकी स्थापना करनेवाले व्यक्ति शिक्षित एवं धनाढ्यवर्गसे सम्बन्धित हैं आदि।

कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि उपर्युक्त वातावरणका निर्माण हमारे राजनीतिज्ञोंद्वारा हुआ है और वे ही इससे आपाततः लाभान्वित भी होते देखे जा रहे हैं। ऐसे दूषित वातावरणमें सामान्य सामाजिक यदि परद्रोही, परधन-रत एवं पर-अपवादमें निरत हो जाय तो आश्चर्य ही क्या है ? भीख माँगने और जेब काटनेको फैशनकी चीज समझ लेना भी मेरे विचारसे इसी दूषित वातावरणका परिणाम है।

जिस समाजमें अविश्वास, घृणा एवं कटुवादकी प्रवृत्तियोंको प्रोत्साहन प्राप्त होता हो, उस समाजका नवयुवक यदि हमारे उपर्युक्त छात्रोंकी भाँति अशिष्ट एवं उपेक्षापूर्ण व्यवहारका अभ्यस्त हो जाय, तो यह सर्वथा स्वाभाविक ही है। उसका व्यवहार यदि हमारे अन्धकारपूर्ण भविष्यका अग्रदूत है, तो हमारा कर्तव्य है कि हम अपने हृदयपर हाथ रखकर शान्तिपूर्वक विचार करनेका प्रयत्न करें।

वैज्ञानिक एवं प्रगतिशील विचारधाराएँ सदैव हितकारी हैं और उन्हें रोका भी नहीं जाना चाहिये। प्रश्न तो है उनके सीमित, संयत एवं सर्वहितकर उपयोगका। अमृततुल्य पौष्टिक एवं सुस्वादु पदार्थका असंयत प्रयोग अजीर्णकारी एवं रोगोत्पादक हो जाता है। अतएव आवश्यक है कि हम आगे बढ़नेके साथ-साथ रुकना और पीछे देखना न भूल जायँ। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य आज उच्छृङ्खलताकी सीमातक ही नहीं पहुँच गया है, अपितु वह दूसरेकी स्वतन्त्रताका अपहरण करनेवाला एवं परपीडनकारी भी बनता जा रहा है। पूँजीवादके प्रति उत्पन्न घृणा अब प्रत्येक शरीफ़ आदमीके जीवनको खतरेमें डालनेवाली चीज बनती जा रही है एवं विज्ञानद्वारा प्रदत्त तर्क एवं विश्लेषण अविश्वास एवं अनास्थाकी सीमाको पार करके अज्ञान एवं जडताके प्रतीक बन उनके प्रति दुराग्रह करने लगे हैं।

प्राचीन अज्ञानजन्य परम्पराओंको विशृङ्खलित करनेका कार्य प्रायः समाप्त हो चुका है। अब नव-निर्माणकी आवश्यकता है। अतः हमारा कर्तव्य है कि जो कुछ हमने प्राप्त कर लिया है, कम-से-कम हम उसके प्रति तो आस्तिक और विश्वासी बन जायँ। प्रत्येक घटना प्रत्येक क्षण अतीत बनती रहती है। अतीतके प्रति निरङ्कुश अविश्वासका अर्थ वर्तमानके प्रति उपेक्षा और भविष्यके प्रति अविश्वास है। उपेक्षा और अविश्वासके वातावरणमें निर्माणका स्वप्न केवल दिवास्वप्न बनकर रह जाता है। हमारे उदीयमान नवयुवकोंका तथाकथित अशिष्ट व्यवहार खतरेकी घंटी है, जिसे सुनकर हमें सजग और सावधान हो जाना चाहिये तथा वर्तमानको प्याजके छिलकेकी भाँति निरर्थक समझकर बराबर त्याज्य समझते रहनेकी प्रवृत्तिपर अपने गन्तव्यकी भूमिकामें गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये।

अन्तिम समयकी प्रार्थना

(लेखक—श्रीचारुचन्द्र चट्टोपाध्याय एम्० ए०)

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् । तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥ (ईश० १५)

हे भगवन् ! आप अखिल ब्रह्माण्डके पोषक हैं । आपकी भक्ति ही सत्य धर्म है । मैं उस धर्मका पालन करता हूँ । आपका श्रीमुख, सच्चिदानन्दस्वरूप सूर्यमण्डलकी ज्योतिर्मयी यवनिकासे आवृत है । मैं आपका निरावरण प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता हूँ । मेरे मनोरथकी पूर्ति आप अवश्य करेंगे । आपके निरावरण दर्शनमें जो बाधाएँ हैं, आप उन सबको मेरे लिये हटा दीजिये ।

[इस मन्त्रका एक अर्थ यह भी है—'हे परमात्मन्, सोनेके पात्रसे अर्थात् सोनेकी तरह लुभानेवाली मायाकी यवनिकासे, आपका मुख आवृत है, यानी मैं विषयमें पड़ा हूँ । इस समय, हे सबके पोषक ! उस आवरणको इस सत्य-परायण साधकके लिये आप हटा दें, ताकि मैं आपका दर्शन कर सकूँ ।']

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन्समूह । तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥

(ईश० १६)

हे भगवन् ! आप भक्तोंके पोषण करनेवाले हैं । एकमात्र आप ही सबको ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं । आप सबका नियमन करनेवाले हैं । आप भक्तोंके लक्ष्य हैं । आप प्रजापतिके भी प्रिय हैं । हे प्रभो ! सूर्यमण्डलकी तप्त रश्मियोंको अपनेमें मिला लीजिये और मुझे अपने दिव्य स्वरूपके दर्शन कराइये । आपका जो परम सुन्दर, कल्याणतम रूप है, उसे मैं आपकी कृपासे देख रहा हूँ । वह जो सूर्यमण्डलस्थ पुरुष है, वही मैं भी हूँ ।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम् । ॐ क्रतो स्मर कृतꣳ स्मर क्रतो स्मर कृतꣳस्मर ॥ (ईश० १७)

मेरे प्राण, इन्द्रिय इत्यादि अपने-अपने उपादान (जल, वायु इत्यादि) में विलीन हो जायँ और स्थूल शरीर जलकर भस्म हो जाय । हे अग्निरूपी ब्रह्म (ॐ) ! आप मेरा और मेरे कर्मोंका स्मरण कीजिये । अन्तकालमें मैं आपकी शरणमें आ गया हूँ ।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥

(ईश० १८)

हे अग्ने ! आप मुझे मङ्गलमय पथसे भगवान्‌के चरणोंमें पहुँचा दीजिये । आप मेरे कर्मोंको जानते हैं । यदि आपके जाने मेरा कोई कर्म ऐसा हो जो इस पथमें बाधा डाले, तो आप कृपाकर उसे नष्ट कर दीजिये । इस समय मैं और कुछ नहीं कर सकता, अतः बार-बार आपको नमस्कार करता हूँ ।

मित्र

[कहानी]

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

[सच्ची घटना—नाम बदले हुए]

(१)

'भई हम तो आरामको आराम समझकर ही आरामके साथ आराम करते हैं। आरामको हराम नहीं समझते।'

'बनासा, मैंने यह बात नहीं कही। आप बुरा मान गये। मेरे कहनेका तो अभिप्राय केवल इतना ही था कि प्रतिष्ठानके कार्यको भी कभी-कभी देख लिया जाया करे, ताकि आमद-खर्चका सही-सही हाल मालूम होता रहे।'

सेठ सुरपालजीके सुपुत्र रमेशजीको लाड़प्यारकी बोलीमें सभी लोग 'बनासा' कहा करते थे। वे एक ही पुत्र सुरपाल-जीके यहाँ, बड़े दान-पुण्य, व्रत-उपवास करनेपर उत्पन्न हुए थे। इनके जन्मोत्सवपर खूब खुशियाँ मनायी गयी थीं। दीन-दुखी और याचकोंको भरपूर इनाम दिया गया था।

सुरपालजीके पास धन-दौलतकी कमी नहीं थी। उन्होंने बड़ी ईमानदारी और कड़ी मेहनतसे कमाया था। उनके पूर्वज भी काफी रुपया कमाकर पिछली पीढ़ीके वास्ते छोड़ गये थे। इसीसे अब कोई अभाव—असुविधा उन्हें आरामकी जिंदगी बितानेमें महसूस नहीं होती थी; किंतु यह बात नहीं थी कि अपनी बड़े-बड़े नगरोंकी दूकानोंका काम सुरपाल न देखते हों। वे सभीके आय-व्ययको बड़ी बारीकीसे देखते और आगे आय बढ़ानेका मुनीमोंको मार्गदर्शन करते थे। उनकी सलाह और शासनके मुताबिक काम होनेसे दूकानोंपर आयके जरिये भी बढ़ते जाते थे। कार्यकर्ता उनके भयसे ईमानदारी और दिलचस्पीके साथ कार्य किया करते थे।

रमेश 'बनासा'के कमरेमें शीतकालमें रुई-भरे रेशमी पर्दे लगे रहते थे, ताकि जरा-सी भी शीतलहर उन्हें न लग जाय, नहीं तो जुकाम या निमोनिया हो जानेका भारी भय लगा रहता था—विशेषकर माता कुसलाजीको।

इसी प्रकार ग्रीष्म-ऋतुमें खसकी टट्टियोंका उपयोग होता था और उनपर हर समय जल छिड़कनेके लिये कई आदमी नौकर थे। पंखे चलते थे। कमरेमें शिमलाके समान शीतलता बनी रहती थी। उनके आराममें तनिक भी विघ्न न डाला जाय, यह सभीको हिदायत थी—उनके माता-पिताकी।

एक दिन बनासाके मास्टर साहबने पेढ़ियोंका कुछ काम देखते रहनेकी बात उनसे कही थी, जिसका उन्होंने ऊपर-वाला उत्तर दिया था।

× × ×

खबर फैली कि नगरमें दो नामी गवैये आये हैं, जिनकी संगीत-कलाकी लोगोंमें खूब चर्चा हो रही है। मित्रोंके आग्रहसे बनासाके यहाँ भी इन मशहूर गायकोंका संगीत सुननेका आयोजन किया गया।

हसीन गायिकाने खड़े होकर लहजेके साथ मुस्ककर एक गजल गायी। साजिन्दे अच्छा साथ दे रहे थे। गजलमें एक शेरकी यह कड़ी थी—

'तुम तो नादां हो सनम किसकी बनी रहती है!'

गजल सुनकर सभीने तारीफके पुल बाँध दिये।

फिर उस्ताद हबीबुल्लाखाँ उठे। साज मिलाकर सितारके तारोंपर फुर्तीसे अभ्यस्त अंगुलियोंको चलाते हुए उन्होंने एक लाजवाब गजलमें यह शेर कहा—

'बनीके चेहरे पै लाखों निसार होते हैं
बनी बिगड़ती है, दुश्मन हजार होते हैं।'

इस शेरपर उस्तादजीको खूब दाद मिली।

संगीतज्ञोंको इनाम-इकराम देकर विदा कर देनेके बाद बनासाने अपने मास्टर साहबसे प्रश्न किया—'इन दोनोंकी गजलोंमें 'बनी' शब्दका अर्थ मैं समझ नहीं पाया। मुझे सब 'बनासा' कहते हैं, तो यह 'बनी' क्या बला है? कृपया समझाइये।'

'बनासा! 'बनी' शब्दके दो अर्थ हैं—प्रतिष्ठा (सफलता) और दुलहन। अपनी ही भूलों और आलस्यसे जब प्रतिष्ठा बिगड़ जाती है और आयके मार्ग रुक जाते हैं, तब मित्रादि लोग अकारण ही बदल जाते हैं। दूसरे, नयी दुलहनको देखनेके

लिये सभी लोग लालायित रहते हैं। तीसरा अर्थ यह भी है कि समयके फेरसे किसीकी प्रतिष्ठा एक-सी नहीं रहती।

मास्टरसाहबकी इस उपदेशात्मक व्याख्याने बनासाके दिलपर कोई खास असर नहीं किया। बनासाके दोस्तोंकी संख्या वैसे तो अधिक थी, किंतु पाँच तो अन्तरङ्ग मित्र थे। इनमें भी चार तो ऐसे थे, जो बनासाकी प्रत्येक रंगरेली और आमोद-प्रमोदमें साथ रहकर उनका मन बहलाया करते थे। ये चारों उनके बचपनके बादके मित्र बने थे।

हाँ, केशव पुजारी उनके बालपनेका ही मित्र है। तबका, जब वे सेठ सुरपालके आँगनमें घुटरु-घुटरु चलते थे। विद्याध्ययन भी दोनोंका साथ ही हुआ था। जबतक सुरपालजी इस संसारमें रहे, तबतक केशवके सिवा अन्य मित्र बनासाके नहीं हो पाये थे; क्योंकि तब बनासाको बाहर निकलकर किसीसे मिलने-जुलनेकी आजादी न थी। इसमें अपने इकलौते लाड़ले लालको किसी प्रकारका अनिष्ट हो जानेकी शंका ही विशेष कारण था। बचपनसे वयस्क होनेतक केशव बनासाका प्रिय मित्र बना रहा। कोई भी काम ऐसा नहीं, जिसे केशवके बिना वे अकेलेहीमें कर लिया करते हों। केशवको बुलानेके लिये उनके पास हर समय एक नौकर मौजूद रहता था।

केशव पढ़नेमें जैसा तेज था, वैसा ही सुशील, अध्यापकोंका, माता-पिताका और गुरुजनोंका आज्ञाकारी एवं सदाचारी था। कोई भी जनसंकुल चौराहा ऐसा नहीं था, जहाँके लोग आपसमें केशवके अनेक सद्गुणोंका बखान न करते रहते हों। ऐसे सुयोग्य मित्रके साथ रहकर बनासामें भी सद्गुणोंका समावेश हो गया था—सेठ सुरपालके सामने ही।

किंतु उनकी मृत्युके बाद बनासाके उन चार मित्रोंने उनपर कुछ ऐसा प्रभाव जमाया कि वे अकारण ही केशवसे रुष्ट रहने लगे। केशव भी इस रहस्यको समझ गया था, इसीसे वह बुलानेपर भी कम ही आता-जाता था।

(२)

एक दिन पाँचों मित्रोंमें वार्तालाप हो रहा था। केशवका जिक्र आ गया। एक मित्र बोला—अजी, बनासाके साथ हमें मौज उड़ाते देखकर उसके मनमें जलन होती है। कभी आकर मिलता ही नहीं, तब यही समझा जाय कि—

'वह खुलके क्या मिलेगा, घुंडी है उसके दिलमें।
वह चावल क्या पचेगा, जिसमें कनी रहेगी!'

पर वास्तवमें ऐसा नहीं था। कुछ दिनोंके पश्चात् केशव बनासासे मिलनेकी चाह मिटानेके निमित्त स्वयं उनके भवनपर गया। मित्र वहीं बैठे थे। सबका आग्रह हुआ कि वह कुछ संगीत सुनावे। भोलेभाले केशवने सुरीला राग छेड़ दिया और एक सुन्दर वैराग्य तथा भक्तिमूलक भजन गाया—

'खबर नहिं या जुगमें पलकी।'
सुकृत कर ले राम सुमिरि ले, को जाने कल की। खबर नहिं······

इस भजनको सुनकर पासके कुछ भगवद्भक्त एकत्र हो गये। उनका आग्रह हुआ कि और भी भजन सुनानेकी कृपा हो। किंतु एक मित्र बीचहीमें बोल उठा—'केशव! कोई सिनेमाका गाना सुनाते तो हम दोस्तोंकी तबीअत हरी हो जाती, पर आप तो श्वान······' सभी मित्र कहकहा मारकर हँसने लगे।

मित्रोंकी यह व्यंगभरी बात सुनकर केशवको बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ। सोचा—'मैंने अनधिकारियोंके सामने यह भजन गाया ही क्यों? ऐसे लोगोंको, जिनके हृदयमें श्रीभगवान्‌का नाम सुननेकी चाह नहीं है, छोड़कर चल देना ही उचित है।

'जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही।'
—तुलसीदासजी

और वह उसी समय शान्तभावसे चुपचाप वहाँसे उठकर चल दिया।

× × ×

धीरे-धीरे समय निकलता गया। आलस्य और उद्यमहीनताके कारण बनासाके आयके स्रोत रुकते गये। प्रतिष्ठानोंसे लाभकी अपेक्षा अधिक हानि होनेके आँकड़े आने लगे। मित्रोंद्वारा अपव्यय कराना जारी रहा; किंतु आयके बिना वह चलता कबतक। शनैः-शनैः यहाँतक हुआ कि प्रतिष्ठा और धन-दौलत सभी कुछ समाप्त हो गये। जबतक पेढ़ीकी साख बनी थी, अन्य साहूकारोंने बनासाको हजारों रुपये उधार देना चालू रक्खा; किंतु इनका दीवाला निकलता जानकर और निधि देना तो दूर रहा, पहलेकी अपनी निधिकी वसूलीके लिये रात-दिन तकाजा करने लगे।

कुछ ऋणदाताओंने तो दावा करके घरका सामान कुर्क करवा लिया। शेष बनासाको तंग करने और खरीखोटी सुनाने लगे, जिससे उनकी बेचैनी बढ़ गयी। किंतु ऋण चुकानेके लिये बनासाके पास अब बचा क्या था। वे, उनकी पत्नी और चार बच्चे शेष थे, जो बुरी तरह पेट पालते थे। उन्हें वही कड़ी हमेशा याद आया करती थी—

'तुम तो नादां हो सनम किसकी बनी रहती है।'

(३)

'भाई, उसके पास चलकर उसकी सहायता तो करनी चाहिये। हमारे मौज-शौकमें उसने बहुत पैसा खर्च किया है। आज उसके दिन बिगड़ गये हैं, तो हमारा दोस्ती या मानवताके नाते फर्ज है कि बिगड़े वक्तमें उसका साथ दें।'

'ब्रजेश! तुम तो सिद्धपनेकी बातें करते हो। पानीकी तरह पैसा बहाया, तो उसे आयपर भी ध्यान देना चाहिये था। इसके ऐश-आरामका बेजा फायदा उठाकर कारिन्दोंने स्वार्थ-साधनमें इसकी सारी पूँजी बर्बाद कर दी। यह सट्टेसे धन बढ़ाना चाहता था। हम सीमित आयवाले उसकी मदद करने जायँ, तो अपने बाल-बच्चोंको कैसे पालें। उसे कियेका फल भोगना ही पड़ेगा।'

दूसरा मित्र बोला—'उसी बेचारेका क्या अपराध है, लक्ष्मीका प्रभाव ही ऐसा है। इसे पाकर बड़े-बड़े ज्ञानी-ध्यानी दीवाने हो जाते हैं। कहा है—

'ऐश भी हो इशरत भी हो आराम भी हो।
फिर रहे इन्सान काबूमें, बड़ी मुश्किल है।'

केशव गम्भीर स्वरमें बोल उठा—'गलत। बनासा वह चन्दन है, जिसपर साँपोंका विष भी असर नहीं कर सकता। किंतु तुमलोग उसके लिये विषसे भी अधिक साबित हुए हो और आज उसे ही दोषी बता रहे हो।'

चारों मित्रोंमेंसे कोई भी बनासाकी बिगड़ी दशाकी खबर लेनेको उनके भवनपर नहीं गया। बनासाके कई बुलावे आते, तब भी कोई जाना पसंद नहीं करता था। केशवको तो वे अबतक भी बुलाते नहीं थे। मानव-प्रकृति बड़ी अद्भुत है।

अभिन्न मित्रोंका भी पराया हो जाना देखकर बनासाको बड़ा आश्चर्य और दुःख होता था, पर किससे कहने जायँ मनोव्यथा। किसी तरह निर्धनताके दिन व्यतीत कर रहे थे।

× × ×

केशव पुजारी अपने परिवारके लोगोंमें बैठकर सदा संतोष-सुखका अनुभव किया करता था। उसे स्कूलकी अध्यापकीसे जो वेतन मिलता था, उसीमें किसी तरह गृहस्थीका गुजारा चलाता था—पर शान्तिके साथ। यदि किसी दिन रोटीके साथ दालका प्रबन्ध न हो सकता, तो इसका रंज-गम नहीं। किसी वस्तुके अभावसे कोई अशान्ति उत्पन्न नहीं होने देते थे—सभी घरवाले।

इस शान्ति और संतोषमें भी केशवके मनमें नित्य ही एक शूल चुभती रहती थी। 'आज लखपतिके पुत्र बनासाकी कैसी दीन-दशा हो गयी है। जो पर्दोंके अंदर बैठकर सरदी-गरमी, वर्षाके दिन बिताता था, वह आज दर-दर मारा फिरता है, उसे कहीं नौकरी भी नहीं मिलती। विधिकी कैसी विडम्बना है। अब मैं उनके साथ कैसे कर्तव्य निभाऊँ। वेतनसे तो घरका खर्च भी नहीं चल पाता। दूकानदारोंके तकाजे प्रतिदिन सुनता हूँ। क्या किया जाय?' इन विचारोंमें मग्न केशवके सामने प्रश्न था यही।

मुन्नी बोली—'पिताजी, मेरे ओढ़नी कब लाओगे?' मुन्नाने पूछा—'बाबूजी! मेरे जूते कब लाओगे?' पत्नीने कहा—'अब तो इस जीर्ण-शीर्ण साड़ीकी कपाल-क्रिया करवा दो।' केशव दिलासा देता कि—'मेरा एरियर[1] मिलनेवाला है। उससे हेमवतीका विवाह कर देंगे। बच्चोंके कपड़ोंके साथ ही तुम्हें भी अच्छी-अच्छी साड़ियोंसे सजा दूँगा।' पत्नी इस आश्वासनसे शान्त हो जाया करती थी।

× × ×

केशवके पिता यशोदानन्दन बनासाके यहाँ नित्य ही भगवान्की पूजा करने आया करते थे। इसके लिये उन्हें वार्षिक वेतन मिलता था, जो अब बनासाकी दीनदशा हो जानेके कारण कुछ समयसे नहीं मिला था। इस सम्बन्धमें जब बनासाने दुःख प्रकट किया, तो पुजारीजी धैर्य दिलाते हुए बोले—'मेरे वेतनकी चिन्ता न करें। यह तो भगवत्-सेवा है। किंतु आज मैं आपको एक मन्त्र बताना चाहता हूँ। आप अटल विश्वासके साथ रामनामका जप किया करो। रामनामकी महिमा अपार है। इस जपसे आपके सभी संकट दूर होकर सुख-सम्पदाकी प्राप्ति होगी। तुलसीदासजीने कहा है—

१. वेतन-वृद्धिका इकट्ठा रुपया।

'राम नाम कलि कल्पतरु, सकल सुमंगल कंद ।
सुमिरत करतल सिद्धि सब, पग-पग परमानंद ॥'

भगवान्‌की ऐसी कृपा हुई कि बनासाके हृदयमें राममन्त्र-पर गहरा विश्वास जम गया और वे चित्त-मन लगाकर शान्तिपूर्वक एकान्त स्थानमें बैठकर नित्य रामनामका जप करने लगे ।

(४)

शिक्षाविभागसे आज वेतनवृद्धिका गत वर्षोंका इकट्ठा रुपया सभी अध्यापकोंको मिल रहा है । सभी उसे खर्च करनेकी सूचियाँ बना रहे हैं । केशव तो घरवालोंको पहले ही आश्वासन देता आया है । आज उनकी मनोकामना सिद्ध होनेका दिन है । केशवको लगभग ६००) रुपये मिले । सोचा उसने, 'भला घरके वायदे कैसे भुलाये जा सकते हैं । अन्न-वस्त्र तो इन रुपयोंमेंसे लाना ही है । थोड़ा ऋण-दाताओंको भी देकर संतुष्ट करना है ।' तो भी इन कामोंमें यह रुपया लगा देनेको उसका मन 'हाँ' नहीं कहता । वह ले जाता है केशवको लोकोपकारकी ओर । विवेक भी यही कह रहा है—कर्तव्य भी उसे यही सुझा रहा है ।

पावसकी रिमझिम वर्षामें भींजता हुआ केशव ६००) रु० के नोट जेबमें दबाये हुए प्रसन्न मनसे मार्गपर चला जा रहा है—द्रुत गतिसे । वह बनासाके भवनकी ओर मुड़ा । देखा—उस बड़ी हवेलीमें, जहाँ नौकरों-चाकरोंका जमघट रहता था, बनासा अकेले बैठे हैं—बैठकमें, अब वह सुखका शरीर नहीं—कृश काया है । 'बिगड़ी कौन बनावे मेरे प्रभु बिनु' यह भजन गुनगुना रहे हैं ।

बहुत दिनोंके पश्चात् बिना बुलाये केशवको आता देखकर बनासा कुछ सकुचाये । धन्य है इनके प्रेमको, मित्रताके आदर्शको, यह सोचते हुए उन्होंने कुर्सी खींचकर उसपर केशवको बड़े हर्ष और सम्मानके साथ बैठाया; आप नीचे बैठ गये । दोनों एक दूसरेकी ओर देखते हुए शान्त बैठे रहे । थोड़े क्षणोंकी शान्तिको भंग करती हुई पिंजरेकी मैना बोल उठी। साथ ही केशव बोल उठा—'प्रिय रमेशजी, आज इस गरीब मित्रकी यह तुच्छ भेंट आपको स्वीकार करनी पड़ेगी ।' यह कहकर ६००) की नोट बनासाके हाथोंमें थमाने चाहे । नोटोंको देखकर हाथोंको खींचते हुए बनासाने कहा—'एँ, एक निर्धन दोस्तका धन लेकर मैं कहाँ निस्तार पाऊँगा ? आपके बालबच्चोंको दुःखमें डालकर·······' केशव तुरंत बोल उठा—'मेरे बालबच्चों-की चिन्ता न करें । इस मासका वेतन मिलेगा, उससे सब काम चला लूँगा । इन रुपयोंसे आप छोटा-सा धंधा शुरू करें । प्रभुकृपासे लाभ ही होगा ।'

'धंधेमें लाभ हुआ तो दूने १२००) सहर्ष लौटा दूँगा । नहीं, तो कुछ न दे सकूँगा ।' यह शर्त करायी बनासाने । और केशव तो कह चुका कि 'ये रुपये मैं कभी भी नहीं लूँगा ।'

भगवान् श्रीलक्ष्मीनारायणको नमस्कार कर, चरणोदक ले, उनकी चरण-रज मस्तकपर लगाकर एक छोटा-सा धंधा-रोजगार कर लिया बनासाने । और दीनबन्धुकी कृपा कुछ ऐसी हुई कि उन्हें यथेष्ट लाभ हुआ । दशा सुधरने लगी। पर वे ६००) के १२००) लौटाना नहीं भूले ।

(५)

पड़ोसके एक वयोवृद्ध महाशयसे ज्ञात हुआ कि 'केशव-की एक युवती कन्या कुँवारी है। बेचारे गरीब कहाँसे उसका विवाह करें—इसी चिन्तामें दोनों स्त्री-पुरुष रात-दिन चिन्तासे घुले जाते हैं ।' बात सुनकर बनासाके मनमें आनन्दकी लहर दौड़ आयी । तुरंत पूछ बैठे—'कितना रुपया खर्च होगा विवाहमें ?' 'कम-से-कम १५००)' वृद्ध महाशय बोले । 'हाँ, तो मैं जिम्मा लेता हूँ । वर मिल गया कि नहीं ?' बनासाने उत्सुकतासे पूछा ।

'वर तो मिल गया, पर गरीब होनेसे दोनों ओरका खर्च केशवसे ही कराना चाहता है । १५००) के लगभग खर्च हो सकते हैं ।'

वृद्धके ये वचन सुनकर बनासाने केशवके घर जा ३०००) रु० के नोटोंकी पोटली केशवकी पत्नीको थमाते हुए कहा—'केशव आवे तब उसे दे देना ।'

केशवने आकर नोटोंके साथ पत्र भी देखा । जिसमें हेमवतीका विवाह इन रुपयोंसे कर देनेका विनयपूर्वक आग्रह था । 'तूने रुपये लिये ही क्यों ?' पत्नीको उलाहना देता हुआ केशव तत्काल रुपये लौटानेको बनासाके घर गया । पर, वे तो हेमवतीके विवाहका निश्चय करानेको उसके ससुरालवालोंके यहाँ गये हुए थे, मिले नहीं ।

विवाह रच दिया गया । बाध्य होकर केशवको भी

उसी धनसे अपने यहाँ भी विवाहकी तैयारियाँ करानी पड़ीं। बरातकी आवभगतका सारा प्रबन्ध बनासाने किया और पाणिग्रहण-संस्कार सानन्द सम्पन्न हो गया। केशवने निश्चय कर लिया कि जीवनमें थोड़ा-थोड़ा पैसा बचाकर ३०००) रु० ब्याजसमेत अवश्य ही बनासाको लौटाऊँगा।

इधर कोई नहीं जान पाया कि बनासाको जितना लाभ हुआ था, सभी हेमवतीके विवाहमें लगा दिया। फिर गरीबीके दिन आ गये। परंतु प्रभुकृपा ऐसी हुई कि उन्हें एक अच्छे ठिकानेपर पर्याप्त वेतनकी बहुत आरामकी नौकरी मिल गयी।

बनासाकी फिर बढ़ोतरी देखकर बाजारमें दो कुँजड़े आपसमें बातचीत कर रहे थे। एकने कहा—"भई, सबकी दशा फिरती है। कहा है—'ऊजड़ खेड़ा फिर बसे, निरधनियाँ धन होय।' बनासा और केशवके उदाहरण हमारे सामने है।"

दिनेश, ब्रजेश, गणेश, सुरेश उन चारों मित्रोंने बाजारमें सौदा लेते हुए कुँजड़ोंकी बातें सुन लीं। सुनकर चारों बड़े ही उदास हो घर लौटते हुए मार्गमें आपसमें पश्चात्ताप कर रहे थे कि 'हम क्यों न बनासाकी बिगड़ीमें काम आये।' इतनेहीमें उन्हें उनके चिरपरिचित वृद्ध मौलवी साहब मिल गये। वे इन्हें देखते ही बोल उठे—'ओहो, आज बहुत दिनोंके बाद दिखायी दिये हो। उदास कैसे नजर आ रहे हो?'

'उदास तो नहीं, बनासा.........' मौलवी साहब बीचहीमें बात काटकर बोल उठे—'हाँ-हाँ भई, वही तो मैं कह रहा था। आपलोगोंने अच्छा नहीं किया। सच पूछो तो साफ बात यह है कि—बुरा मत मानना—बनासा बिगड़ा आपहीकी बदौलत। पर जब वह दाने-दानेको मोहताज हो गया, तब भी आपने उसकी खबर नहीं ली! यह क्या इंसानियत है? जो किसीके दुखदर्द या बिगड़ी हालतमें काम न आये, वह चाहे कैसा ही जिगरी दोस्त हो, वह दोस्त तो है ही नहीं, बल्कि इंसान भी नहीं है—हैवान है। देखो केशवको। खैर, बाकीकी जिंदगी नेक काम करनेमें ही आपको बितानी चाहिये। यह मेरी नसीहत है।'

बातकी चोट लग गयी चारोंके दिलोंपर। वे घर न जाकर सीधे बनासाके यहाँ पहुँचकर अश्रुभरे नयनोंसे पश्चात्ताप करते हुए अपने अपराधकी बार-बार उनसे क्षमा-याचना करने लगे। बनासाने चारोंको छातीसे लगाते हुए शान्त भावसे कहा—'भाइयो, पश्चात्ताप न करो। इसमें आपका नहीं, मेरी ही अकर्मण्यताका दोष था। पर इसमें मुझे दुनियादारी और भले-बुरेकी पहचान अवश्य हो गयी है—

'धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपतकाल परखिये चारी[1]॥'

'वास्तवमें संसारमें अमीर-गरीब कोई नहीं है, जैसा कि 'जौक'ने कहा है—

'कितने मुफलिस हो गये, कितने तवंगर हो गये।
खाकमें सब मिल गये, दोनों बराबर हो गये॥'

'अतः हम सबको रात-दिन भगवत्-भजन करते रहना चाहिये। यही दुर्लभ मानव-जीवन पानेका सार है।'

इसके पश्चात् उन मित्रोंका जीवन ही पलट गया। उन्होंने शेष जीवनमें अनेक परोपकारके काम किये। गरीब छात्रोंको वृत्तियाँ दिलवायीं, गुंडोंसे महिलाओंको मुक्त किया, गोशालाओंमें घासका प्रबन्ध कराया, कसाइयोंसे बूढ़ी गायोंको छुड़वाया, बहेलियोंसे चिड़ियोंके भरे पींजरे खाली करवाये, कबूतरोंको जुआर, चींटियोंको चींटी-चुगा डलवाने और बेरोजगारोंको रोजगार दिलानेका प्रबन्ध किया। रुपये लेकर झूठी गवाही देनेवालोंको विरत किया। कुएँ, बावलियाँ, मन्दिर-छत्रियाँ बनवायीं। भगवन्नाम-संकीर्तन-मण्डल कायम किये। डाकुओंके दलोंमें जा-जाकर साहसके साथ सदुपदेश दिये और रात-दिन इसी उधेड़बुनमें रहे कि क्या-क्या लोकोपकारके काम हम करें। यों नेक कामोंमें निरत रहते-रहते ही उन्होंने शेष जीवन, प्रत्येक श्वासके साथ हरिःस्मरण करते हुए व्यतीत किया।

---

१. रामचरितमानस।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

सूक्ष्मजगत्में महात्माओंका अस्तित्व

सन् १९६० में जब मैं चारों धामकी यात्राके लिये निकला तो मेरे पास कुछ भी नहीं था। वैसे तो कभी भी मेरे पास कुछ नहीं रहता। एक साधु-संन्यासीके भेषमें जगत्को संचालन करनेवाली उस शक्तिके आध्यात्मिक अन्वेषणार्थ ही मैंने यह कार्यक्रम बनाया था।

गंगोत्री जानेपर गङ्गा माताके उद्गमस्थान (जो कभी गंगोत्रीमें ही रहा होगा) गोमुखी जानेकी तीव्र आकाङ्क्षा हुई। वैसे पूर्वसे ही ऐसी धारणा थी किंतु साधन होनेपर ही जाना हो सकता है, बहुत ही कठिन मार्ग है, ऐसा सुनकर कुछ निश्चय नहीं कर पाया था।

गंगोत्रीमें कुछ दिन ठहरकर प्रबल विचार-शक्तिके महापुञ्जका निर्माण कर रहा था कि अचानक महाभगवती गङ्गापर एक महात्मा, जो यात्री ही थे, मुझे गोमुखीके लिये प्रेरणा देने आये। उनके साथ दो भक्त भी थे। अतः दूसरे ही दिन हमलोगोंने प्रस्थान किया।

रास्तेमें काली कमलीकी धर्मशालामें एक रात्रि विश्राम करके जो आगे बढ़े तो रास्तेमें एक महात्माका आश्रम था। अब हमें आगेके मार्ग-दर्शनकी सुविधा एवं अन्य चाय आदिकी सुविधा भी वहीं मिली। उस दिन गङ्गा-दशहरा था। रास्तेमें पड़नेवाली एक नदी धूप पड़नेसे बढ़ जाती है। अतः हमें शीघ्र ही लौटना चाहिये—ऐसा निर्देश मिला। किंतु रास्तेमें रेतके पर्वतोंपर बिना किसी आधारके चलना बहुत कठिन प्रतीत हो रहा था। एक स्थानपर सहसा मैं गिरते-गिरते बचा। वास्तवमें गङ्गा-माईका स्मरण ही मुझे बचा सका था, किंतु एक अन्य स्थानपर पाँव फिसलनेसे मैं एकदम नीचे गिर पड़ा। यह स्थान एकदम गङ्गाजीमें था। गोमुखीके मार्गमें चिह्न-स्वरूप बड़े पत्थरोंपर छोटे पत्थर रक्खे हुए होते हैं। उन्हींके आधारपर क्वचित् जानेवाले यात्री जाते हैं, पुनः जो जिस मार्गसे जाता है, वहीं उसी प्रकारके पत्थर रखता हुआ भावी मार्ग-प्रदर्शनकी रूपरेखा स्थापित करता है। एक बार मार्ग भूलनेपर बहुत भटकना पड़ता है।

मैं थियोसाफिकल सोसाइटीका सदस्य हूँ। इस संस्थाकी मान्यताके अनुसार संस्थाके आद्य प्रवर्तक जीवन्मुक्त महात्माओंका अस्तित्व सूक्ष्म जगत्में है और वे लोग ऐसे अवसरोंपर सहायकके रूपमें स्वयं या अपने माध्यमद्वारा किंवा शिष्योंद्वारा जनकल्याण करते रहते हैं।

मैं एकदम घबराकर उन गुरुदेवका ध्यान करने लगा और मुझे आभास हुआ कि कोई अज्ञात शक्ति मुझे ऊपरकी ओर खींच रही है, किंतु घबराहटके कारण मुझे कुछ भी सूझ नहीं रहा था। अन्तमें मैंने उस अव्यक्त शक्तिके अस्तित्वमें दृढ़ श्रद्धा करके पैर जमाकर पुनः ऊपरकी ओर चढ़नेका प्रयत्न किया। और मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा कि तुरंत ही मैं अपने साथियोंमें था जो मेरे लिये प्रार्थना कर रहे थे।

जैसे भी, हम गंगोत्री पहुँचे। स्नानोपरान्त कुछ जलपान किया। डिब्बोंमें जल भर रहे थे कि एक बर्फकी बड़ी चट्टान गिरी और हम सभी अचानक चौंक गये, किंतु उन अव्यक्त महात्माओंकी कृपासे वह चट्टान हमसे एक फुट दूर-पर गिरी। यदि हम पानी भरनेके लिये थोड़ा आगे बढ़ते तो क्या होता, इसकी कल्पना करना सहज ही है। इस घटनाके उपरान्त वापिस आनेमें हमें सतत उस संरक्षकका आभास मिलता रहा। महात्माकी कुटियापर पहुँचकर हमने गङ्गा-दशहराके उपलक्ष्यमें प्रसाद पाया। तबसे मेरा विश्वास इन अव्यक्त जगत्के महात्मामण्डलमें दृढ़ हो गया। —स्वामी योगेश्वरानन्दगिरि एम्० टी० एस०

(२)

जन्म-जन्मतक कर्जका बन्धन

पाश्चात्त्य सभ्यतासे प्रभावित होनेके कारण चाहे आज पुनर्जन्ममें विश्वास न किया जाय, किंतु आज भी ऐसी अनेक घटनाएँ देखनेमें आती हैं जो इस विश्वासको बराबर दृढ़ करती रहती हैं।

गत वर्ष जूनकी बात है, निश्चित दिन याद नहीं आ रहा है लेकिन था कोई छुट्टीका दिन ही। मैं गाँव गया हुआ था। जलेसर, एटाके पास ही रेलवे लाइनके किनारे स्थित मेरा गाँव तलैयामें प्रतिबिम्बित बड़ा रमणीक लगता है, आमके वृक्षोंसे घिरी यह तलैया गर्मियोंमें भी कभी नहीं सूखती। आमके इस बागमें प्रायः बालक झुंड-के-झुंड खेलते रहते हैं। यहीं उस दिन एक बालक साँपके काटनेसे बाल-बाल बचा था।

दिन भरकी गपसपके बाद रातको सोनेहीवाला था कि यह खबर बिजलीके करंटकी तरह गाँव भरमें फैल गयी

कि मुखियाके जवान लड़केको साँपने डँस लिया। सभी हाय करके रह गये। ढाक बजना शुरू हुआ, आस-पासके गाँव-गाँवसे लोग इकट्ठे हो गये। अनेक मन्त्रज्ञाता और सर्पको जगानेवाले ओझा बुलाये गये, रातभर ढाक बजनेके बाद सबेरेके समय उस लड़केके विषका प्रभाव कम हुआ। वह झूमने लगा, तब कहीं हम सब लोगोंके चेहरोंपर कुछ रौनक-सी आयी। ढाक बजानेवालोंके दममें दम आया अपनी यह आंशिक सफलता देखकर।

वह बक्करा और बोला—'मैंने इसका कुछ नहीं बिगाड़ा था, तो भी इसने मेरे पीछेसे लाठी मारी। मैं बचकर भाग गया और रातको मौका पाकर मैंने इससे बदला ले लिया।'

तब ढाक बजानेवालोंने प्रश्न किया—'तुम उस अबोध बालकके सामने क्यों बैठे थे जो रेतमें बैठा खेल रहा था। उसे बचानेको ही ऐसा किया गया; क्योंकि वह तुम्हारे फनके ऊपर रेत डाल रहा था। डर था कि तुम उसे डँस लेते।' तब उत्तर मिला कि 'बात ऐसी नहीं थी, पिछले जन्ममें वह एक साहूकार था और मैं उसका किसान था। मैंने सौ रुपयेका कर्ज लिया था जो न चुका पाया, उसीके लिये मैं माफी माँग रहा था कि जब इन्सानका जन्म मिलेगा तो मैं चुका दूँगा। बीचमें इस मुखियाके लड़केने विघ्न डाला इसलिये मैंने इसको डँसा, अब इसे यही दण्ड है कि यह १००) उस बालकके बापको दे दे तो जहर उतर जायगा।' ऐसा ही किया गया तब लड़का विषमुक्त हो गया।

कितना विचित्र विधान है। भगवान् करें—कर्ज लेना ही न पड़े और लिया जाय तो यहीं चुक भी जाय।

—मदनमोहन 'उपेन्द्र' साहित्याचार्य, विद्यावाचस्पति

(३)

जब भगवान्ने मार्ग-प्रदर्शन किया

घटना मई १९६० की है। गरमीकी छुट्टियाँ हो गयी थीं और मैं अपने पिताजी, माताजी एवं ताऊजीके साथ ऋषिकेश गया हुआ था। ताऊजी लगभग पंद्रह वर्षोंसे नेत्रविहीन हैं परंतु तीर्थाटन करनेकी इच्छा होनेके कारण वे भी हमलोगोंके साथ गये थे। ऋषिकेशमें लगभग पंद्रह दिन रहनेके बाद हमलोग घरके लिये लौट पड़े। लौटते समय यह निश्चित हुआ कि तीन या चार दिन हरिद्वारमें भी रहा जाय। हरिद्वार पहुँचकर स्टेशनसे बाहर पासवाली धर्मशाला-में ही हमलोगोंने एक कमरा ले लिया और उसमें अपना सामान आदि रख दिया।

दूसरे दिन सबेरे आठ बजे हमलोग मंसादेवीके दर्शनार्थ चल दिये। देवीजीका मन्दिर पहाड़पर काफी ऊँचाईपर स्थित है और वहाँतक पहुँचनेके लिये जो रास्ते बनाये गये हैं, उनपर नेत्रविहीन ताऊजीका चलना सुलभ न था, अतः ताऊजीको हमलोग धर्मशालामें ही छोड़ आये थे।

मंसादेवीके मन्दिरतक पहुँचते रास्तेमें हमलोगोंको एक परिवार और मिल गया। वे लोग भी देवीजीके दर्शन करने जा रहे थे। यात्रामें दो व्यक्ति जब मिलते हैं तो वे बहुत जल्द एक दूसरेसे परिचित हो जाते हैं; यही हाल वहाँ हुआ; हम सब लोग परस्पर बातें करते मन्दिरतक पहुँचे और सबने देवीजीके दर्शन किये।

लौटते समय हम दोनों परिवार साथ-साथ ही लौटे। रास्तेमें विचार हुआ कि सूरजकुण्डके, जो मन्दिरसे अधिक दूर नहीं है, भी दर्शन कर लिये जायँ। विचारानुसार हम-लोगोंने सूरजकुण्ड देखा और कुछ क्षण रुकनेके बाद वहाँसे लौट पड़े। थोड़ी दूरतक हमलोग परस्पर बातें करते चलते रहे, पर थोड़ी ही देर बाद पता चला कि हमलोग रास्ता भूल गये हैं। चारों ओर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ थे और बीचमें थी गहरी घाटी। शहरकी झलक भी हमलोगोंको नहीं दिखायी पड़ रही थी। दोपहरी निकट आती जा रही थी और धूप बढ़ती और तेज होती जा रही थी। प्यास अलग अपना प्रभाव दिखा रही थी। अब इसके सिवा कोई चारा न था कि अधिक ऊँचाईपर चढ़कर देखा जाय कि शहर किस ओर है और नीचे उतरनेका रास्ता किधरसे होकर जाता है। मन मारकर सब लोग टेढ़े-मेढ़े रास्तोंसे होते हुए ऊपरकी ओर बढ़ने लगे। थोड़ी दूरतक जानेके बाद आगेका मार्ग बंद हो गया, जिससे हमलोगोंकी परेशानी और बढ़ गयी। हमलोग फिर धीरे-धीरे उसी मार्गसे वापस लौटने लगे। वापस लौटनेपर एक और मुसीबत आ खड़ी हुई। एक स्थानपर आकर रास्ता दो भागोंमें बँट गया था। हमलोगोंको घबराहटमें यह भी ध्यान न रहा कि हमलोग किस रास्तेसे आये थे। सब लोग विचार-विमर्श करने लगे कि किस रास्तेपर चला जाय। मेरी तो प्यासके मारे जैसे जान ही निकली जा रही थी। दूसरे परिवारके साथ आये दो बच्चोंका भी यही हाल था। धूप इतनी तेज थी कि खोपड़ी तवे-सी तप रही थी और मालूम हो रहा था कि यदि आधे घंटे तक यही हाल रहा तो हमलोग चक्कर खा-कर गिर पड़ेंगे।

मैंने उस संकटकालमें एकमात्र सहायक दीनबन्धु भगवान्का आर्तभावसे स्मरण करना शुरू कर दिया और इसका बड़ा ही आश्चर्यजनक फल हुआ।

सब लोग विचार-विमर्श कर ही रहे थे कि हमलोगोंको अकस्मात् एक आवाज सुनायी पड़ी—'जान पड़ता है कि आपलोग रास्ता भूल गये हैं।'

हमलोगोंने यह जाननेकी कोशिश की कि आवाज किधर-से आ रही है। सब लोग अभी इस बारेमें सोच ही रहे थे कि पुनः आवाज आयी—'आपलोग इधर आइये।'

हमलोग अनुमानसे एक रास्तेपर बढ़े। दो ही पग चलनेपर हमलोगोंने देखा कि एक बहुत ही बूढ़ा व्यक्ति, केवल एक लूंगी पहने, पहाड़की तपती हुई नंगी छातीपर बिना कुछ बिछाये बैठा है। मुझे आश्चर्य हुआ कि वह आदमी तपती हुई भूमिपर बैठा कैसे है ?

उसके पास पहुँचकर सब रुक रहे और मैंने उससे पूछ ही लिया, 'बाबा! तुम यहाँ क्या करते हो ?'

'भीख माँगता हूँ बेटा' उसका उत्तर था।

'यहाँ तुम्हें भीख कौन देता होगा, बाबा ?' मुझे आश्चर्य हुआ और आश्चर्यकी बात ही थी।

'देखिये, आपलोग इस रास्तेपर चले जाइये।' मेरी बातको अनसुनी करके उसने एक ओर संकेत करते हुए कहा, 'थोड़ी दूर चलनेपर आपलोगोंको नीचे उतरनेका मार्ग मिल जायगा।'

हमलोग चलनेको हुए, तभी वे बुड्ढे बाबा फिर बोले—'धूप बड़ी तेज है और आपलोगोंको प्यास जरूर लगी होगी।'

'हाँ बाबा!' सबने एक स्वरसे कहा।

'तो परेशान मत होइये, आगे चलनेपर रास्तेमें एक मन्दिर मिलेगा, जहाँ आपलोगोंको पीने योग्य पानी मिल जायगा।'

यह सुनकर सबमें एक नयी स्फूर्ति आ गयी और सब बाबाको धन्यवाद दे आगे चल पड़े। दो ही पग चलनेपर माताजीने कुछ सोचा और थैलेमेंसे कुछ फल निकालकर, जो हमलोगोंने ऊपर चढ़ते समय ले लिये थे, बाबाको देनेके लिये वे पीछे मुड़ीं। तुरंत ही उन्होंने हम सबको रोक लिया और सबने आश्चर्यसे देखा कि बाबाजीका कहीं पता नहीं है। हमलोग फिर उस स्थानतक आये पर बहुत खोजनेपर भी वे कहीं दिखायी न पड़े। आखिर इतनी जल्दी बाबाजी चले कहाँ गये ?

हमलोग मनमें तरह-तरहकी धारणाएँ बनाते हुए आगे बढे। बाबाजीके कथनानुसार हमलोगोंको पीने योग्य पानी भी मिल गया।

धर्मशालामें आकर जब मैंने ताऊजीको उक्त घटना सुनायी तो वे गद्गद होकर बोले, 'धन्य हो बेटा तुम! जो इस उम्रमें ही बूढ़ेके रूपमें तुम्हें भगवान्के दर्शन हो गये।'

—कृष्णकुमार वैश्य

(४)

होटलमें अद्भुत ईमानदारी

गत दिसम्बरकी बात है। मैं ट्रकके कुंडे सप्लाईका काम करता हूँ। कुंडेके बिलके रुपये गौहाटी सेंट्रल वर्कशापसे मिलते हैं; मैं रुपये लेने गौहाटी गया था। वहाँसे मैं २८,००० (अट्ठाईस हजार) रुपये लेकर अपनी जीपद्वारा घरको रवाना हुआ। रुपये तीन पार्टियोंके थे। चलते समय मनमें आया कि रात हो गयी है, आठ बजे हैं, यहाँ होटलमें भोजन करके ही चला जाय। तदनुसार मैंने श्रीपरमानन्दजी शर्माके 'दुर्गा-जलपान' उल्लूवाड़ी, गौहाटीमें जाकर भोजन किया। रुपये बेगमें थे। भोजन करके मैं जीपपर सवार होकर चल दिया। लगभग चार मील आनेपर मुझे बेगकी याद आयी, देखा और सोचा कि बेग होटलमें ही रह गयी है। मैं वापस आया, जीप होटलके सामने रुकी। उसके रुकते ही होटलके मालिक श्रीपरमानन्दजी शर्मा बेग हाथमें लिये मेरे पास आये और बोले—'भाई साहेब, आप चिन्तित मालूम पड़ते हैं। आपकी यह बेग सँभालिये। देखिये सही हालतमें तो है न ?' मैं यों सहज ही बेगको सही-सलामत पाकर दंग रह गया। मानो ईमानदारी, सचाई और त्यागकी मूर्तिमान् सजीव प्रतिमाके रूपमें श्रीपरमानन्दजी मुझे प्रबोध दे रहे हैं!

आजके इस अर्थलोलुपताके युगमें, फिर होटलमें ऐसे व्यक्तियोंके दर्शन बड़े दुर्लभ होते हैं। मैं भगवान्से प्रार्थना करता हूँ, श्रीपरमानन्दजीका यह आदर्श सभीके लिये अनुकरणीय और कल्याणकारी हो।

—हेमराज अग्रवाल, खेत्री, गौहाटी (असम)

श्रीहरिः

कल्याणके पुराने विशेषाङ्कोंमेंसे केवल चार ही मिल सकते हैं

१—संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त्तपुराणाङ्क

यह सुप्रसिद्ध वैष्णवपुराण 'ब्रह्मवैवर्त्तपुराण' का साररूप है। इसमें दिव्य गोलोकविहारी परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अभिन्नस्वरूपा श्रीराधिकाजीकी अमृतोपम गोलोकलीला तथा उनकी अवतारलीलाका बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। साथ ही सब देवताओंकी एकता, सारी शक्तियोंकी एकता, भक्तितत्त्व, सदाचार, कर्म और कर्मफलोंका, दिव्यलोकोंका, ज्ञान-विज्ञानका, चमत्कारपूर्ण दुर्लभ स्तोत्रों, कवचों और मन्त्रोंका विशद विवेचन है। अतएव यह अङ्क सभीके लिये परमोपयोगी और संग्रह करने योग्य है।

इसमें ७०० से अधिक पृष्ठ, बहुरंगे चित्र—१७, दोरंगा—१, सादे—६ और लगभग १२० रेखाचित्र हैं। इसका मूल्य केवल रु० ७.५० न० पै० (सात रुपये पचास पैसे) एवं सजिल्दका रु० ८.७५ न० पै० (आठ रुपये पचहत्तर पैसे) डाकखर्चसहित है। कृपया आज ही मनीआर्डरद्वारा मूल्य भेजकर इस दुर्लभ अङ्कको मँगाइये, एवं अपने इष्ट-मित्रोंको भी मँगानेके लिये प्रोत्साहित कीजिये। बादमें बिक जानेपर सम्भवतः निराश होना पड़े।

२—हिंदू-संस्कृति-अङ्क

पृष्ठ ९०४, लेख-संख्या ३४४, कविता ४६, संगृहीत २९, चित्र २४८, डाकव्ययसहित मू० ६ रु० ५० नये पैसे। साथ ही इसी वर्षका अङ्क दूसरा तथा तीसरा बिना मूल्य।

३—मानवता-अङ्क

पृष्ठ-संख्या ७०४, मानवताकी प्रेरणा देनेवाले सुन्दर ३९ बहुरंगे, एक दोरंगा, १०१ एकरंगे और ३९ रेखाचित्र। डाकव्ययसहित मूल्य ७ रु० ५० नये पैसे।

देशभरमें चुने हुए महात्माओं और विद्वानों तथा विदेशी महानुभावोंके मानवतासम्बन्धी सद्विचारोंके संग्रहसे सम्पन्न और सबके द्वारा प्रशंसित।

४—'संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क' (दूसरा संस्करण)

पृष्ठ-संख्या ७०४, चित्र बहुरंगे १७, दोरंगा १, सादे १२ तथा रेखा-चित्र १३८ कुल १६८। मूल्य रु० ७.५०।

३६ वें वर्षका यह 'संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क' प्रथम बार १,३१,००० छापा गया; परंतु उसकी माँग इतनी अच्छी रही कि सब प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक गयीं और हजारों पुराने ग्राहकोंको भी अङ्क न मिल सके। इसलिये कामकी भारी असुविधा होनेपर भी २०,००० प्रतियोंका दूसरा संस्करण छापना पड़ा था।

यह विशेषाङ्क सुप्रसिद्ध शिवपुराणके साररूपमें सरल हिंदी भाषामें बहुत ही सस्ता है। इसमें भगवान् शिवकी बड़ी ही विचित्र मधुर लीलाओंका, भक्तवत्सलताका और उनके अवतारोंका तथा योगभक्तिके तत्त्वोंका बड़ा ही विशद और सर्वोपयोगी वर्णन है। कथाएँ बड़ी ही रोचक तथा प्रभावोत्पादक हैं।

व्यवस्थापक—**कल्याण, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

जाली छपे लेटर-पेपर और जाली प्रमाणपत्रके द्वारा रुपये ठगनेवालोंसे सावधान !

तथाकथित सर्वोदय आश्रमके स्वामी त्रिलोकीनाथ नामक व्यक्ति 'गीताप्रेस, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश, एवं हनुमानप्रसाद पोद्दार'के शीर्षकसे जाली लेटरपेपर छपवाकर, उसपर ऋषिकेश १३ अप्रैल सन् ६५ दिनाङ्क देकर नीचे लिखा जाली प्रमाणपत्र टाइप करके मोदीनगरके सम्मान्य श्रीगूजरमलजी मोदीके पास गये और उस प्रमाणपत्रको दिखाकर उनसे पाँच सौ रुपये ले आये। टाइप किये हुए जाली प्रमाणपत्रका अविकल रूप यह है—

प्रमाण पत्र

पत्र वाहक श्री स्वामी त्रिलोकी नाथ जी महाराज बहुत ही कर्मठ एक कर्मयोगी, विद्वान एवं दार्शनिक तथा श्री हनुमान जी महाराज के महान उपासक हैं। स्वामी जी भारतीय संस्कृति के अनुरुप गोरखपुर से ३२ मील दूर सरजू माता के पावन तट पर सर्वोदय आश्रम की स्थापना किये हैं। मुझे भी आपने आश्रम की संरक्षक बोर्डमें रखकर मेरे पर बड़ी कृपा की है। आप अपने आश्रम में एक विशाल श्रीहनुमान मन्दिर का निमार्ण कार्य आरम्भ कर दिये हैं जिसके निमित्त श्री स्वामी जी भारत के विभिन्न क्षेत्रों में इस प्रमाण पत्र के साथ भिक्षा पर्यटन करने जा रहे हैं। आशा और निश्‍चय मेरा आप से हार्दिक अनुरोध है कि मेरे सभी प्रेमी तथा उदार व्यक्ति सज्जन और महाजन स्वामीजी की आर्थिक सहायता करने की कृपा कर अपने दरवाजे से अपने दरवाजे से भिक्षुक को लौटने नहीं देंगे।

भवदीय

(जाली हस्ताक्षर) हनुमान प्रसाद पोद्दार

यह सारी जाली चीजें उन्होंने गीताप्रेसके और मेरे नामका दुरुपयोग करके लोगोंसे रुपये ठगनेके लिये बनायी हैं। सम्मान्य श्रीगूजरमलजीने मेरे प्रति प्रेम तथा सद्भाव होनेके कारण उन्हें रुपये दिये, इसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ; पर मेरे नामपर वे ठगे गये, इस बातका मुझे बड़ा खेद है। स्वामी त्रिलोकीनाथ श्रीगूजरमलजीके अतिरिक्त और कहाँ-कहाँ गये तथा किन-किनसे कितने रुपये लाये—इसका पता नहीं है। अतएव वे यदि किन्हींसे इस प्रकार रुपये ले गये हों तो वे सज्जन कृपया रुपयेकी संख्या तारीखसहित मुझे लिख दें। साथ ही अपने यहाँकी पुलिसमें भी सूचना दे दें।

मेरे व्यक्तिगत नामका कोई भी पत्रक या लेटरपेपर मैंने छपाया ही नहीं है और न मैं प्रायः किन्हींको भी रुपये देनेके लिये पत्र या प्रमाणपत्र ही लिखता हूँ। अतएव मेरे सभी प्रेमियों तथा परिचितोंसे मेरा यह निवेदन है कि वे मेरे नामसे लिखे, छपे या टाइप किये हुए ऐसे किसी भी पत्र या प्रमाणपत्रपर किसीको भी मुझसे बिना पूछे रुपये-पैसे कुछ भी न दें और कोई यदि किन्हींके पास माँगने आवे तो तुरंत उसकी पूरी सूचना देनेकी कृपा करें।

हनुमानप्रसाद पोद्दार